# विषयों की सूची।

पृष्ठ

मिलने का पताः----

डाक्टर वासुदेवराव लिमये,

मोदी लैन, सीताबर्डी,

नागपुर।

# भूमिका।

यह छोटीसी पुस्तक, हमारे मित्र, डाक्टर वासुदेवराव लिमये, की आज्ञा से लिखी गई है। गत वर्ष दिसंबर में जब हम दोनों बनारस की कांग्रेस को गये थे तब डाक्टर साहब ने यह प्रस्ताव किया था कि, स्वदेशी आन्दोलन पर **केसरी** में जो लेख लिखे गये हैं वे यदि हिन्दी में प्रकाशित हों तो उनसे बहुत लाभ होगा। यह सूचना मुझे बहुत अच्छी लगी। मैंने डाक्टर साहब की इच्छा के अनुसार इस काम को करने की प्रतिज्ञा की। परंतु दुर्भाग्यवश जनवरी से अप्रेल तक यहां प्लेग का बड़ा जोर रहा। इस लिये उस समय कुछ काम न हो सका। अब यह पुस्तक छपकर तैयार है, जो सुहृदय पाठकों की सेवा में अर्पण की जाती है।

पूना के सुप्रसिद्ध देशहितैषी श्रीयुत बाल गंगाधर तिलक द्वारा सम्पादित **केसरी** समाचार-पत्र में, स्वदेशी आन्दोलन के संबंध में, जो लेखमाला प्रकाशित हुई है उसकी भाषा ऐसी मनोहर, विवेचन-पद्धति ऐसी गंभीर और भाव ऐसे ऊंचे दर्जे के हैं, कि मराठी पढ़नेवाले उसपर मोहित हो जाते हैं। हिन्दी में उसका अनुवाद करना बड़ा कठिन काम है। अतएव मैंने उसका शब्दशः भाषान्तर नहीं किया; किन्तु उसके यथार्थ भावों को हिन्दी में प्रकाशित करने का यथ और यथाशक्ति मैंने प्रयत्न किया है। यह गंभीर विषय पाठकों की समझ भलीभांति आ जाय और उसका असीम महत्व सब लोगों को विदित जाय, इस हेतु मैंने उसके भिन्न भिन्न भाग किये हैं। कहीं कहीं मूल-लेख का अनुवाद किया गया है; कहीं उसका भाव ही दिया गया है और कहीं केवल उसके आधार पर नूतन रचना की गई है। कहीं कहीं अन्य ग्रन्थों और लेखों के आधार पर भी कुछ नई बातें लिखी गई हैं। इस बात का निर्णय पाठकगण स्वयं कर लेंगे, कि इस यत्न में मैं कहां तक सफल हुआ।

संभव है कि परीक्षकों की दृष्टि में इस लेख की योग्यता बहुत कम पाई जाय। अतएव मेरी यह प्रार्थना है कि, इस लेख को पढ़कर वे गल-

लेखों की योग्यता का अनुमान न करें। यदि इस लेख में कुछ न्यूनता हो—यदि यह लेख किसी काम का न हो—तो यह दोष मूल-लेखों का नहीं, स्वयं मेरा है। और यदि भाग्यवश, इस लेख में कुछ गुण पाये जाँय—यदि यह लेख किसी काम का प्रतीत हो—तो यह समझिये कि यह मूल-लेखों ही का प्रभाव है—इसमें स्वयं मेरा कुछ भी भाग नहीं है।

इस पुस्तक में जिन विषयों की चर्चा की गई है वे, इस समय, हमारी एकता के लिये अत्यंत हितदायक हैं। आशा है कि हमारे देशभाई, आपस की फूट से बचकर, अपने देश की वर्तमान दशा की ओर केवल 'स्वदेशी' दृष्टि से ध्यान देंगे और अपनी पवित्र जन्मभूमि में एक राष्ट्रीयता—एक जातीयता—के बीजारोपण का यत्न करेंगे।

अंत में मैं अपने मित्र डाक्टर लिमये साहब को एकबार और धन्यवाद देता हूं, क्योंकि उन्हींकी आज्ञा और कृपा से मुझे **केसरी** के परम पवित्र भावों का अनुवाद करने का यह मौका मिला। जिन जिन मित्रों ने मुझे इस कार्य में सहायता दी है वे भी मेरे हार्दिक धन्यवाद के भागी हैं।

नागपुर, ता. १-८-०६.

माधवराव सप्रे

# स्वदेशी-आन्दोलन और बायकाट

अर्थात्

## भारतवर्ष की उन्नति का एकमात्र उपाय।

### देशोपालम्भ।

( एक मित्र-द्वारा रचित )

[ १ ]

हे भाग्यहीन ! हत ! भारतवर्षदेश !
हे हे विनष्ट-धन-धान्य-समृद्धि-लेश !
प्राचीन-वैभव-विहीन ! मलीन-वेश !
हा हा ! कहां तव गई गरिमा विशेष ?

[ २ ]

जो थे प्रणम्य पहले तुम कीर्तिमान,
विज्ञान और बल-विक्रम के निधान।
सम्पत्ति, शक्ति निज खोकर आज सारी,
हा हा ! हुए तुम वही सहसा भिखारी ॥

[ ३ ]

स्वाधीनता-सदृश वस्तु न और प्यारी,
हे दीन-देश ! वह भी न रही तुम्हारी !
व्यापार एक तुमको कर खूब आया,
आलस्य-मोह-मद-मत्सर-मन्त्र भाया ॥

[ ४ ]

हा! सभ्य-भाव तुमने जिनको सिखाया,
विद्या-कलादि गुण से जिनको लजाया।
देखो, वही अब असभ्य तुम्हें बनाते;
तौ भी कभी न कुछ भी तुम चित्त लाते॥

[ ५ ]

आत्माभिमान-गुण के अतिमात्र त्यागी,
हे देश! क्यों न तुम डूब मरे अभागी?
आत्मावलम्ब जिसको कुछ भी न प्यारा,
देता उसे न जगदीश्वर भी सहारा॥

[ ६ ]

दिव्याति-दिव्य तव रत्न, अहो, कहां हैं?
शोभा-समूह पट-पुञ्ज, कहो, कहां हैं?
खोया सभी कुछ; न, हाय, तुम्हें हया है!
हे देश! शेष तुम में रह क्या गया है?

[ ७ ]

निःसार होकर पड़े तुम जी रहे हो,
पानी सदैव पर के कर पी रहे हो।
अन्यावलम्ब-सम और न पाप भारी;
बोलो, गई विमल बुद्धि कहाँ तुम्हारी?

[ ८ ]

हे आत्मशत्रु! परदेशज वस्तु त्यागो;
सौ कोस दूर उससे सब काल भागो।
जागो, चहो यदि अभी अपनी भलाई,
क्यों आँख मूँद करते निज-नाश भाई?

[ ९ ]

क्यों हैं तुझे पट विदेशज, देश, भाये?
क्यों है तदर्थ फिरता मुँह निज बाये?
तूने किया न मन में कुछ भी विचार,
धिक्कार भारत! तुझे शत-कोटि बार!

[१०]

सूई, छड़ी तक, निकृष्ट दियासलाई,
लेता सदैव सुखसे फिरता पराई।
निर्लज्ज ! सोच मन में कर क्या रहा है ?
क्यों व्यर्थ ही धन अपार लुटा रहा है ?

[११]

लूटा तुझे बहुत बार खुले खजाना,
तातार-गोर-गज़नी-नृप ने न माना।
पै लूट, आज कल, जो यह हो रही है,
तू सोच देख उससे बढ़ के कहीं है ॥

[१२]

छाई जहां अति अपार दरिद्रता है;
प्राचीन-धान्य-धन का न कहीं पता है।
सुप्राप्य पेट भर नित्य जहां न दाना;
क्या चाहिए धन वहां पर यों लुटाना ?

[१३]

जो जो पदार्थ तुमको अपने बनाये
हैं प्राप्य, लो तुम वही; न छुवो पराये।
लावो न गे वचन जो मन में हमारा,
तो सर्वनाश अब दूर नहीं तुम्हारा ॥

[१४]

हे देश ! स-प्रण विदेशज वस्तु छोड़ो;
सम्बन्ध सर्व उनसे तुम शीघ्र तोड़ो।
मोड़ो तुरन्त उनसे मुँह आज से ही;
कल्याण जान अपना इस बात में ही ॥

[१५]

हे दीन-देश ! तव निद्य परावलम्ब
नाशै समूल, सुखकारिणि शक्ति अम्ब !
त्यागो तुरन्त विष-तुल्य विदेश-वस्तु;
सानन्द पाठक ! कहो तुम भी 'तथास्तु'॥

## विषयप्रवेश।

इस लेख के शीर्षक में कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ स्पष्ट रीति से आरंभ ही में बतला देना चाहिए। पहिले सबसे अधिक महत्व का शब्द 'स्वदेश' है। हम जानते हैं कि आजकल इस शब्द का व्यवहार कुछ शिक्षित लोग करने लगे हैं; परंतु इसका यथार्थ ज्ञान बहुतही थोड़े लोगों के हृदय में प्रतिबिम्बित हुआ देख पड़ता है। वास्तव में इस शब्द का यथार्थ ज्ञान इस देश के सब लोगों को—इस पवित्र आर्यमाता की बत्तीस करोड़ सन्तान को—होना चाहिए। जब लड़के पाठशाला में जाते हैं तब उन्हें भूगोल पढ़ाया जाता है। उससे वे यूरप, अमेरिका, आफ्रिका आदि भू-खण्डों के भिन्न भिन्न देशों का हाल भलीभांति सीख लेते हैं; परंतु बड़े खेद की बात है—बड़े शोक की बात है—कि वे 'अपने' देश के संबंध में कुछ भी नहीं जानते! यद्यपि नक़शे पर वे अनेक स्वतंत्र-देश देखते हैं तथापि वे इस बात का कभी विचार तक नहीं करते कि 'अपना' देश कहां है—'स्वदेश' की दशा कैसी है! इसीलिये हम कहते हैं कि यद्यपि इस समय 'स्वदेश' शब्द का उपयोग करनेवाले बहुतसे लोग हैं, तथापि उस मोहक और जादू से भरे हुए शब्द के मर्म को—उसके ज्ञान और उसकी शक्ति को—पहचाननेवाले बहुत थोड़े हैं। अतएव इस लेख के पढ़नेवालों को स्मरण रखना चाहिए कि, [गत] वर्षार्ध में भारतवर्ष की सच्ची उन्नति का जो बीजारोपण किया गया, और [उ]सके आन्दोलन से सारा देश कँप गया, उसका मूल-कारण 'स्वदेश' ही है। अर्थात् स्वदेश ही के लिये यह उद्योग किया गया, स्वदेश ही के लिये यह उद्योग अबतक किया जा रहा है और स्वदेश ही के लिये यह उद्योग भविष्य में भी जारी रहेगा; क्योंकि **स्वदेशभक्ति** और **स्वदेशाभिमान** जैसे उच्चतम और गंभीर भाव ही इस उद्योग के आधारस्तम्भ हैं।

बंगभंग के कारण इस देश में जो अद्भुत आन्दोलन हुआ—जो विलक्षण हलचल हुई—उसका वर्णन समाचारपत्रों के पढ़नेवालों ने, भिन्न भिन्न पत्रों में, अवश्य पढ़ लिया होगा। तथापि एक स्वतंत्र लेख में, तात्विक रीति से,

प्रधानतः पूना के सुप्रसिद्ध "केसरी" पत्र के आधार पर, इस विषय की विस्तृत चर्चा करने की आवश्यकता समझी गई। इसका उल्लेख भूमिका में किया गया है। आशा है कि पाठकगण इस लेख को बहुत ध्यान देकर पढ़ेंगे। इस लेख के शीर्षक में 'बायकाट' एक और शब्द है जिसके अर्थ के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। इस समय हम उसके विषय में यहां कुछ भी लिखना ठीक नहीं समझते। उसका अर्थ आगे चलकर पाठकों को आपही आप विदित हो जायगा। अब हम प्रस्तुत विषय की उत्पत्ति और उसके ऐतिहासिक महत्व के संबंध में कुछ विवेचन करते हैं।

---

## प्रस्तुत विषय की उत्पत्ति और उसका ऐतिहासिक महत्व।

जिस समय, कुछ दिन पहले, हिन्दुस्थान-सरकार ने बंगाल-प्रांत के दो टुकड़े करने का प्रस्ताव प्रकट किया था, उस समय, इस देश के सब लोगों ने अपनी असम्मति प्रकट की थी। लोगों ने कहा कि जो लोग धर्म, भाषा, व्यवहार, रीति-रवाज और शिक्षा में एक हैं उन्हें विभक्त करके शक्तिरहित करना किसी प्रकार उचित और न्याय-संगत नहीं हो सकता। इसी विषय का प्रतिवाद, बम्बई की कांग्रेस में भी, सन् १९०४ ई० के दिसं महीने में, किया गया था; और गवर्नमेन्ट के पास एक रिज़ोल्यूशन (मंत भेजा गया था कि, यदि एक लेफ्टिनेन्ट गवर्नर से बंगाल-प्रांत का प्रबंध न हो सकता तो वहां एक गवर्नर नियत किया जाय। बंगाल-प्रांत के लो ने तो, वंग-भंग से अपनी असंतुष्टता प्रकट करने के लिये, एक या दो नहीं किंतु, सैकड़ों सभाएं कीं। उन्होंने गवर्नमेन्ट को अनेक बार प्रार्थनापत्र भेजकर अपनी असम्मति दिखलाई और नम्रतापूर्वक यह प्रार्थना की, कि बंगालियों की एकता को क़ायम रखने के लिये वंग-भंग की आज्ञा रद्द की जाय। इंगलैण्ड में "इन्डिया कौन्सिल" नाम की एक सभा है। उसीके द्वारा इस देश का शासन-कार्य किया जाता है। उस सभा के मंत्री को "सेक्रेटरी आफ् स्टेट फ़ार इन्डिया" कहते हैं। इन मंत्री महाशय के पास

भी अनेक प्रार्थनापत्र भेजे गये; और इस देश की पराधीन-प्रजा की पुकार को निष्पक्षपात होकर सुननेवाली पार्लियामेन्ट-सभा में भी इस विषय की चर्चा कराई गई। सारांश, अंगरेजी क़ानून के अनुसार इस देश की प्रजा को जितना आन्दोलन करने का अधिकार (अर्थात् जिसको अंगरेज़ी भाषा में Constitutional agitation कहते हैं) था उतना सब किया गया; परंतु हमारे देश के दुर्भाग्य से, प्रजा की प्रार्थना पर, न तो हिंदुस्थान-सरकार ने ध्यान दिया, न स्टेट-सेक्रेटरी ने कुछ विचार किया और न पार्लियामेन्ट-सभा ने ही कुछ मन लगाया! गत सितम्बर की पहिली तारीख को गवर्नमेन्ट ने वंग-भंग की आज्ञा प्रकाशित कर दी!! सन् १९०५ ई० के अक्टूबर की सोलहवीं तारीख से ढाका, मैमनसिंग, फ़रीदपुर, बाकरगंज, त्रिपुरा, नोवाखाली, चटगांव, राजशाही, दीनाजपुर, जलपैगुरी, रंगपुर, बोग्रा, पबना और माल्दा आदि जिलों को बंगाल-प्रांत से काटकर "पूर्वी बंगाल और आसाम" नाम का एक नया प्रांत बनाया गया!!!

इस अनुचित आज्ञा के प्रकाशित होते ही सम्पूर्ण देश, एक छोर से दूसरी छोर तक, कांप उठा; उसमें एक प्रकार की विलक्षण स्वाभाविक शक्ति उत्पन्न हो गई। आजतक जो देश मुर्दे की तरह सोता पड़ा था उसमें प्राकृतिक चेतना की ज्योति फिर भी देख पड़ने लगी। जो बंगाली लोग वाक्पटुता ही के लिये प्रसिद्ध हो रहे थे वे अब आंतरिक स्फूर्ति से [illegible]म जाग उठे और अपने हित—अपने देश के हित—के लिये, स्वयं [illegible]पने ही बल पर (अर्थात् केवल आत्मावलंबन करके) किसी दूसरे की [illegible]हायता की अपेक्षा न करते हुए, बद्धपरिकर हो गये। जब उन लोगों ने देखा कि भीख मांगने की पद्धति (Constitutional agitation) से कुछ लाभ नहीं होता, तब उन्होंने यह निश्चय किया कि, हम लोगों को अपनी [illegible]न्नति अपने आप करनी चाहिए। इसलिये उन्होंने **विदेशी-वस्तु के त्याग और केवल स्वदेशी-वस्तु के व्यवहार** की अटल प्रतिज्ञा की। अल्प समय ही में इस अटल प्रतिज्ञा का जोश सारे देश में फैल गया।

साधारण लोगों को उक्त प्रतिज्ञा में कुछ विशेषता देख न पड़ेगी;

क्योंकि 'स्वदेशी-वस्तु' का आन्दोलन*, इस देश में, पहले भी, कई बार, हो चुका था, और उसका परिणाम बहुत संतोषदायक नहीं हुआ। परंतु जो लोग अपने देश की वर्तमान-दशा और कुछ वर्ष पहिले की दशा पर ध्यान देते हुए उक्त प्रतिज्ञा का सूक्ष्म रीति से विचार करेंगे उन्हें अवश्य विश्वास हो जायगा, कि प्रस्तुत कार्य में एक अति महत्व का राजनैतिक तथा ऐतिहासिक तत्व गुप्त रीति से छिपा हुआ है। यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो यही कहना पड़ेगा, कि भारतवर्ष के वर्तमान-इतिहास में, यह आन्दोलन एक अनुपम घटना है—यह हम लोगों की राजनैतिक उन्नति का एक स्पष्ट चिन्ह है। इस कार्य की सिद्धता पर ही—उक्त प्रतिज्ञा का पालन होने पर ही—दुनिया के सभ्य तथा उन्नत देशों की पंक्ति में गिने जाने की, हमारे देश की, योग्यता अवलंबित है। सारांश, यह कार्य हमारे स्वावलंबन और कर्तृत्व-शक्ति का द्योतक है। इस विषय का बोध होने के लिये कुछ पूर्वावस्था की आलोचना करनी चाहिए। इससे वर्तमान प्रसंग का महत्व और उसकी गंभीरता पूर्ण रीति से समझ में आ जायगी।

## यह प्रसंग बड़ेही मार्के का है।

यह एक अत्यन्त महत्व का प्रश्न है, कि विदेशी-राजसत्ता के आधीन रहनेवाले लोगों को, अपने प्राचीन स्वत्वों [हक़] की रक्षा करने और नये स्वत्व प्राप्त करने के हेतु, किन उपायों की योजना करनी चाहिए? किसी एक देश में विदेशियों की राजसत्ता स्थापित हो जाती है तब उस देश के लोगों के बहुतेरे प्राचीन हक़ छीन लिये जाते हैं—उनकी स्वाधीनता का हरण कर लिया जाता है; और उन लोगों को किसी प्रकार के नये स्वत्व सहज ही नहीं दिये जाते। पाठको, क्या आपको मालूम नहीं कि ठीक यही दशा, कुछ दिनों से, इस देश की—इस पवित्र और प्राचीन भरत-भूमि की—हो रही है?

* तीस वर्ष पहले, महाराष्ट्र देश में, स्वर्गवासी गणेश वासुदेव जोशी ने 'स्वदेशी वस्तु के व्यवहार' का आन्दोलन किया था।

यदि पूछा जाय कि, जब से इस देश में अंगरेजों का राज्य आरंभ हुआ तब से, उन लोगों ने प्रजाहित के जो काम किये हैं उनमें सब से उत्तम कौनसा है, तो यही कहा जायगा कि पाश्चात्य ज्ञान-दान ही को अग्रस्थान देना चाहिए। उसी ज्ञानामृत का पान करने से हमारे कुछ देश-हितचिंतकों ने यह सोचा कि, यदि सब लोग एकदिल होकर शांतिपूर्वक और नम्रता से, अपनी सम्मति सरकार पर प्रकट करेंगे, तो उसपर सरकार कुछ ध्यान देगी। अर्थात् सर्व साधारण लोगों की सम्मति को मान देकर सरकार, अपनी प्रजा की पुकार को, अवश्य सुनेगी और उसकी सदिच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न करेगी। बस, इसी विश्वास से हमारे सब शिक्षित समाज-नायक राज्यसंबंधी आन्दोलन करने लगे। प्रायः सब लोगों की यही राय क़ायम हुई, कि हिन्दुस्तानियों को राज्य-व्यवस्थानुसार आन्दोलन Constitutional agitation सीखना चाहिए, क्योंकि अंगरेज-सरकार Constitutional agitation ही को मान देती है। हर्ष की बात है कि इस प्रकार के आन्दोलन से हम लोगों को कुछ थोड़ासा लाभ भी हुआ है। छोटी मोटी बातों में गवर्नमेन्ट ने लोगों के मत का आदर किया, और उनकी पुकार पर ध्यान देकर कुछ स्वत्व भी प्रदान किये। परंतु इस बात को भली-भांति स्मरण रखना चाहिए, कि जब सरकार अपने दिल से कुछ करना चाहती है, जब वह किसी एक कार्य के संबंध में आग्रहपूर्वक अपना निश्चय कर लेती है, तब उक्त प्रकार के आन्दोलन से कुछ भी लाभ नहीं होता——वह ...लन इस देश के सरकार की स्वतंत्र और स्वेच्छाचारी गति को किसी ...र रोक नहीं सकता।

शायद कोई यह शंका करे कि, इंगलैण्ड में तो जन-सम्मति को बहुत मान ...लता है, (यहां तक कि वहां के राजा का आसन भी प्रजा की सम्मति पर अवलंबित रहता है), और वही इंगलैण्ड-निवासी अंगरेज़ हमारे राजा हैं; ऐसी हालत में हिन्दुस्थानी प्रजा की सम्मति पर ध्यान क्यों नहीं दिया जाता? इसका उत्तर यह है, कि इंगलैण्ड और हिंदुस्थान की दशा में ज़मीन-आस्मान का फ़रक है। इंगलैण्ड स्वतंत्र देश है। उस देश की राज्यप्रणाली के अनुसार वहां के लोग स्वतंत्र हैं—उन लोगों के भिन्न भिन्न पक्षवाले अपने

देश के शासनकर्त्ता होने के अधिकारी हैं। उस देश की राजसत्ता कभी एक पक्षवालों के हाथ में रहती है, कभी दूसरे पक्षवालों के हाथ में। अर्थात् जो पक्ष सब से अधिक लोगों की सम्मति प्राप्त कर लेता है उसी-को राजसत्ता प्राप्त होती है। इसीलिये वहां प्रत्येक समाज-नायक बहुजन-सम्मति को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न करता है। हिन्दुस्थान की दशा भिन्न है। यह देश पराधीन है। इस देश की राजसत्ता इस देश के निवासियों के हाथ में नहीं है। यह विदेशियों के हाथ में है। अतएव, यहां हमारी बहुजनसम्मति को वह सन्मान नहीं मिल सकता जो इंगलैण्ड में अंगरेज लोगों की सम्मति को मिलता है। इसलिये, जिस प्रकार " अभिनवमदलेखाश्यामगंडस्थलानां। न भवति बिसतंतुर्वारणं वारणानाम् "। मदोन्मत्त हाथी कमल के तंतु से नहीं बांधे जा सकते, उसी प्रकार जब हमारे देश में विदेशी-राजसत्ता-रूपी हाथी राजमद से उन्मत्त होकर अनुचित कार्य करने लगता है, तब हम लोगों की शक्तिरहित सम्मति उसको कदापि रोक नहीं सकती। उदाहरणार्थ, जिस समय सरकार ने इस विषय का क़ानून बनाया, कि हिन्दुस्थानी स्त्रियों का गर्भाधान-संस्कार बारह वर्ष की उमर में किया जाय, और इस देशवालों को स्वतंत्र-शिक्षा न देकर सिर्फ उसी प्रकार की शिक्षा दी जाय जो सरकारी अफ़सरों को पसंद हो, उस समय इस देश के लोगों की शक्तिरहित सम्मति और राज्य-व्यवस्थानुसार आन्दोलन करने की निरर्थकता का परिचय हो गया था। अब उसी बात अनुभव, हाल ही में, बंग-भंग की आज्ञा से, एक बार और भी हुआ है।

राजनीति का यह तत्व सर्वमान्य है, कि जिन लोगों की भाषा एक है, जिन लोगों के आचार-विचार एक हैं, जो लोग सैकड़ों वर्षों से एक प्रांत में रहने के कारण एकत्र हैं, वे यदि एक लेफ्टिनेन्ट गवर्नर या एक गवर्नर की शासन-सत्ता के आधीन रक्खे जांय, तो उन लोगों की उन्नति होगी— उन लोगों में एकजातीयता और एकराष्ट्रीयत्व की कल्पना दृढ़ होगी। लार्ड कर्जन के समान दूरदर्शी और दृढ़-निश्चय बड़े लाट इस देश में बहुत कम आये होंगे। उन्होंने यह देखा कि बंगाली-लोग अंगरेजी भाषा, अंगरेजी इतिहास और अंगरेजी साहित्य का अभ्यास करके अंगरेजों की

राज्यप्रणाली के अनुसार आन्दोलन करने लगे हैं; उनकी एकता, उनकी जातीयता, उनकी संघशक्ति बहुत दृढ़ होती जा रही है। यदि यह एकता ऐसीही बनी रहेगी तो उनकी शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि किसी दिन सरकार को उनसे डरना पड़ेगा। अतएव उन्होंने बंग-भंग की युक्ति ढूंढ़ निकाली जिससे बंगालियों की संघशक्ति का नाश हो और सरकारी अधिकारियों की सत्ता अनियत्रित तथा अबाधित बनी रहै। माननीय मिस्टर गोखले ने काशी की कांग्रेस की वक्तृता में कहा है—"The dismemberment of Bengal had become necessary, because, in the view of the Government of India, "it cannot be for the lasting good of any country or any people that public opinion, or what passes for it, should be manufactured by a comparatively small number of people at a single centre and should be disseminated thence for universal adoption." "From every point of view", the Government further states, "it appears to us desirable to encourage the growth of centers of independent opinion, local aspiratons, local ideals and to preserve the growing intelligence and enterprise of Bengal from being cramped and stunted by the process of forcing it prematurely into a mould of rigid and sterile uniformity." You will see that this is only a paraphrase, in Lord Curzon's most approved style, of the complaint of the people of Bengal, that their fair Province has been dismembered to destroy their growing solidarity, check their national aspirations and weaken their power of co operating for national ends, lessen the influence of thier educated classes with their country-[illegible]n, and reduce the political importance of Calcutta. After this, let no [illegible] of the late Viceroy pretend that the object of the partition [illegible]dministrative convenience and not political repression!" इसका [अ]र्थ यह है—हिन्दुस्थान-सरकार ने बंग-भंग की आवश्यकता इसलिये [स]मझी कि "इस बात से किसी देश, जाति वा राष्ट्र को लाभ नहीं हो [स]कता, कि किसी एक स्थान के थोड़ेसे लोग, सर्व-साधारण लोगों के लिये, [स]म्मति तैयार करें और उसीको सब लोग स्वीकार करें। यद्यपि स्वाधीन-[प्र]कृति के स्थानों की वृद्धि अपेक्षित है, तथापि बंगाल-प्रांत की बढ़ती हुई बुद्धि के हित के लिये उसको, हानिकारक एकता से बचाना, आवश्यक है।" लार्ड कर्जन साहब ने अपनी मजेदार इबारत में वही बात कही है जो बंगाली लोग पहलेही से कहते चले आये हैं—अर्थात् बंगाल-प्रांत के दो टुकड़े इसलिये किये

गये कि उस प्रांत के निवासियों की बढ़ती हुई एकता का नाश हो, उनकी जातीय अभिलाषाओं का प्रतिबंध हो, जातीय कार्यों के लिये मिलजुलकर काम करने की उनकी शक्ति क्षीण हो जाय, शिक्षित लोगों का प्रभाव उनके देश-भाइयों पर कम हो जाय, और कलकत्ते का राजकीय महत्व घट जाय। अब लाट साहब के किसी हिमायती को यह न कहना चाहिए, कि राज्य-प्रबंध की सुगमता के लिये बंग-भंग किया गया, कुटिल और कूट राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि के लिये नहीं।

बंगालियों को, और हिन्दुस्थान के सभी लोगों को, राष्ट्रीय-भाव सम्पादन न करने देने का यह प्रयत्न—उनके प्रांत के दो टुकड़े करके उनकी एकजातीयता और एकराष्ट्रीयता का नाश करने का यह उद्योग—सर्वथा निंद्य है। इस कार्य में कोई सहृदय राजनीति-निपुण-पुरुष सहमत न होगा। इस अनुचित कार्य से सरकार का हेतु कदापि सिद्ध न होगा। ऐसे अन्यायी और अनुचित कार्यों से साम्राज्य की चिरस्थायिता को धक्का लगने का डर है। अब यदि किसी का यह विश्वास हो, कि हिन्दुस्थान-सरकार का अनियंत्रित और स्वच्छन्दानुसारी राज्य इस देश में अटल बना रहेगा, तो यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से असत्य प्रतीत होता है। हमारे प्राचीन पुराणों की, रावण आदि राजाओं की, कथाओं को चाहे क्षण भर झूठ मान लीजिये; परंतु दुनिया के सच्चे माने गये इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है जो इस बात को सिद्ध करता हो, कि किसी एक राष्ट्र (किसी एक जाति ने) अन्य राष्ट्र को (अन्य जाति को) दासत्व की शृं[illegible] से ऐसा जकड़कर बांधा कि वह बन्धन कभी ढीला हुआही नहीं।

नियमित राज्यप्रणाली के अनुसार जो आन्दोलन अबतक कि[illegible] जाता था उसकी निर्जीवता का अनुभव धीरे धीरे लोगों को होने लगा[illegible] तथापि कुछ लोगों को यह विश्वास बना ही रहा, कि यदि सारी प्रजा एक होकर जोर से आन्दोलन करै तो उससे निस्सन्देह लाभ होगा। इसलिये बंग-भंग की आज्ञा का विरोध करने में इस आन्दोलन-पद्धति की एकवार और परीक्षा ली गई। बड़ी बड़ी सभाओं में, जहां दस दस बीस बीस हज़ार आदमी हाजिर थे, बंगाल के अनेक राजा, महाराजा, वकील, बारिस्टर,

मारवाड़ी, मुसलमान, व्यापारी आदि सब लोग उपस्थित हुए; अनेक युक्ति-युक्त व्याख्यान दिये गये; वंग-भंग की आज्ञा का शांततापूर्वक विरोध किया गया; हिन्दुस्थान सरकार को प्रार्थना-पत्र भेजे गये; स्टेट-सेक्रेटरी से निवेदन किया गया; और पार्लियामेण्ट में भी इस विषय की चर्चा कराई गई। परंतु, शोक है कि इस प्रचंड आन्दोलन से भी कुछ लाभ न हुआ! सैकड़ों सभाओं में व्यक्त की हुई बहुजन-सम्मति का तिलमात्र भी आदर न करके, सरकार ने अपनी पराधीन प्रजा की उचित और न्याय्य प्रार्थना को पैर के नीचे कुचल डाला!! तब कहीं हमारे समाज-नायकों की आंखें पूरे तौर से खुलीं। तब कहीं वे अपनी गहरी मोहनिद्रा से एकदम जाग उठे। तब कहीं उन लोगों को यह मालूम हुआ, कि बड़ी बड़ी सभाएं करने, लेक्चर देने, रिज़ोल्यूशन पास करने और मेमोरियल भेजने का यह समय नहीं है। तब कहीं उनकी आत्मा ने गवाही दी, कि हमारी वर्तमान-आन्दोलन-पद्धति केवल भ्रममात्र है—वह केवल मृगजल है—वह राजकीय माया का पटल है। सच है; यदि हमारी वर्तमान बहुजन-सम्मति की मर्यादा केवल मौखिक वादविवाद से आगे नहीं बढ़ती, तो उसका असर स्वच्छन्द और प्रबल राजसत्ताधिकारियों के अनुचित बर्ताव पर कैसे हो सकता है? सम्प्रति हमारा आन्दोलन, समुद्र की उन लहरों के समान है जो समुद्र-तट की चट्टानों पर ज़ोर से टक्कर मारकर परावृत्त हो जाती हैं। ये लहरें भी, किसी अंश में, हमारे आन्दोलन [illegible]र्क कार्यक्षम हैं; क्योंकि वे अपने क्षारगुण से, कुछ समय में, उन [illegible]नों में भी बड़ी बड़ी दरारें करके अंत में उनके टुकड़े टुकड़े कर डालती हैं; [illegible]तु हमारे आन्दोलन में यह खारापन भी नहीं है। अतएव हमारे अलोने [illegible]न्दोलन-तरङ्गों का सरकार पर कुछ भी असर नहीं होता। हो कैसे? केवल याचक-वृत्ति से राज्यसंबंधी हक़ कभी प्राप्त नहीं हो सकते। ऐसी अवस्था में लोगों ने सोचा कि अब क्या किया जाय? यदि इसका कुछ प्रतीकार न किया जायगा तो हमारे आन्दोलन में लोगों का विश्वास किसी प्रकार न रह सकेगा। इसमें सन्देह नहीं कि लोगों में, किसी विषय के संबंध में, जागृति कर देना और बहुजन-सम्मति को अपने अनुकूल करलेना लोक-नायकों का काम है; परंतु इससे भी बढ़कर उनका काम यह है कि सरकार

हमारी जागृत की हुई जन-सम्मति का अनादर न करे। इतनाही नहीं, हमारे समाज-नायकों का यही मुख्य कर्तव्य होना चाहिए कि सरकार हमारी जन-सम्मति का आदर करे; हमारी जन-सम्मति के अनुसार जो जो बातें हमें इष्ट हों उनको सफल करने का सरकार प्रयत्न करे। इसी उद्देश्य से बंगालियों ने यह निश्चय किया, कि यदि सरकार हमारी प्रार्थना पर ध्यान नहीं देती— हमारी बहुजन-सम्मति का आदर नहीं करती—तो हम लोगों को विलायती वस्तु के त्याग की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। इसी को बायकाट या बहिष्कार कहते हैं। यह उपाय बहुत अच्छा है। सब लोग जानते हैं कि जब किसी की नाक बन्द कर दी जाती है तब उसका मुँह आपही आप खुल जाता है। ठीक इसी तरह, जबतक हमारे आन्दोलन में कुछ विशेषता न होगी, अर्थात् जबतक हमारे आन्दोलन में सरकार को मजबूर करने की शक्ति न होगी, तबतक सरकार पर उसका कुछ असर न होगा। प्रस्तुत प्रसंग बड़ेही मारके का है और उक्त उपाय भी बहुत अच्छा है। सब लोगों की आंखें टकटकी लगाये देख रही हैं कि अब इसका नतीजा क्या होगा। अब व्याख्यानों की जरूरत नहीं है; जरूरत है कार्य की। अब मौखिक देशाभिमान का समय नहीं है; समय है दृढ़ निश्चय से काम करने का। हम कह आये हैं कि यह प्रसंग भारतवर्ष के वर्तमान समय के इतिहास में एक अत्यंत महत्व की घटना है—यह हम लोगों की आन्दोलन-पद्धति के सुधार का चिन्ह है। सारांश, यह समय ऐसा है कि, अब हम लोगों को अपने दृढ़-निश्चय और ऐक्य-भाव से अपने कार्य की सिद्धता करनी चाहिए; नहीं तो हमें अपने आन्दोलन की पूर्व-पद्धति पर मृगजल के समान विश्वास रखकर, केवल अपनी वाक्पटुता का प्रदर्शन करते हुए, निरंतर दासत्व ही में रहना पड़ेगा।

---

## बायकाट अथवा बहिष्कार और स्वदेशी-वस्तु-व्यवहार की प्रतिज्ञा।

बंगाल-प्रांत के लोगों ने विलायती वस्तु के त्याग की जो अटल प्रतिज्ञा की है वह यथार्थ में अत्यंत योग्य और प्रशंसनीय है। अब सब लोगों को यह बात विदित हो गई है, कि हम चाहे जितना आन्दोलन करें; हम, बहुजन-सम्मति को अपने अनुकूल करके, चाहे जितनी नम्रता और शांति से प्रार्थना करें; परंतु सरकार हमारी प्रार्थना का कुछ भी विचार नहीं करती। ऐसी अवस्था में प्रजा की पुकार को सरकार के कानों तक पहुंचाने के लिये, और अपनी प्रार्थनाओं पर—अपने हक़ों पर—सरकार का उचित ध्यान दिलाने के लिये, बंगाल-प्रांत के लोगों ने जो उपाय सोचा है उसका, हिन्दुस्थान के सब लोगों को, अंत:करणपूर्वक स्वीकार करना चाहिए। इतिहास के पढ़नेवाले जानते हैं, कि जब कोई राजा अपनी प्रजा की पुकार पर कुछ ध्यान नहीं देता तब प्रजा अत्यंत क्षुब्ध हो जाती है। उस समय वह राजा पदच्युत कर दिया जाता है, या उसके अधिकार छीन लिये जाते हैं, या किसी अन्य उपाय से उसको दंड दिया जाता है। इन बातों के उदाहरण, यूरप के इतिहास में, बहुतायत से पाये जाते हैं। अंगरेजों ने तो, एक समय, अपने एक राजा का वध भी कर डाला था! यद्यपि उपायों की योजना, हिन्दुस्थान की वर्तमान दशा में, यहां नहीं की जा सकती; तथापि इतिहास ही हमारा मार्ग-दर्शक है—इतिहास ही ने हम लोगों को और भी अनेक उपाय बतला रक्खे हैं, जिनका प्रयोग प्रसंगानुसार भलीभांति किया जा सकता है। इन्हीं उपायों में से 'बायकाट'—बहिष्कार—भी एक अच्छा उपाय है, जो अनेक देशों के इतिहासों में पाया जाता है। यह एक रामबाण-अस्त्र है जिसका प्रयोग, हम लोग, स्वदेश की यथार्थ उन्नति के लिये भलीभांति कर सकते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारी प्रार्थना उचित और न्याय्य है—हमारा कथन सयुक्तिक है; परंतु जब इस देश के प्रबल राजसत्ताधिकारी, केवल स्वार्थ-वश होकर, हमारी प्रार्थना पर कुछ ध्यान नहीं देते, तब हम लोगों

को ऐसे ही उपायों की योजना करनी चाहिए, जो उनके स्वार्थान्ध नेत्रों में परार्थ-दर्शक अञ्जन का काम करें और हमारा इष्ट हेतु सिद्ध कर सके। सारांश यह कि, जिन लोगों की बुद्धि राजमद और स्वार्थ से भ्रष्ट हो गई है, उन लोगों को व्याख्यान सुनाने से हमारा कल्याण न होगा। जिन उपायों से उनके अपरिमित स्वार्थ-हित का कुछ प्रतिबंध होगा—उनकी जेब पर कुछ थोड़ासा भी असर होगा--उन्हींका अवलम्ब, इस समय, हिन्दुस्थान के प्रत्येक शुभचिंतक को करना चाहिए।

जब कोई मनुष्य अपने मत को पुष्ट और दृढ़ करने के लिए, और लोगों को, जो उसके मत के विरुद्ध हों, तिरस्कृत वा बहिष्कृत करे, तब उसको अंगरेजी में 'बायकाट' कहते हैं। यह बायकाट भारतवर्ष में कोई नई बात नहीं है। उसका उपयोग, हमारे धार्मिक और सामाजिक व्यवहारों में, प्राचीन समय से, चला आ रहा है। हम देखते हैं कि जब कोई मनुष्य अपनी जाति वा समाज के विरुद्ध कुछ अनुचित काम करता है तब वह अपनी जाति वा समाज से अलग कर दिया जाता है; उसका हुक्का पानी बंद कर दिया जाता है; वह जातिच्युत किया जाता है। इसी प्रकार, जब कोई मनुष्य अपने धर्म के विरुद्ध कुछ काम करता है तब वह धर्मबाह्य समझा जाता है। इसीको हमारे धर्मशास्त्र में 'बहिष्कार' कहते हैं। यह एक प्रकार का दण्ड है। उसका मुख्य उपयोग धार्मिक और सामाजिक समझा जाता है। यदि उसका उपयोग राजनैतिक विषयों में भी किया जाये तो उससे बहुत कुछ लाभ होने की आशा है। अंगरेजी के बायकाट* और हमारे बहिष्कार का अर्थ एक ही है; परंतु अंगरेजी 'बायकाट' की उत्पत्ति का इतिहास बहुत मनोरंजक और शिक्षादायक है। सन १८८१ ई० में आयर्लैण्ड देश में इस शब्द की उत्पत्ति हुई। उस समय आयर्लैण्ड के किसानों को अंगरेज जमीदारों के द्वारा बहुत कष्ट सहना पड़ता था। अंगरेज-जमीदार अपने आयरिश-किसानों की जमीन चाहे जब छीन लिया करते थे। पार्लिमेन्ट में इस विषय की अनेक बार चर्चा होने पर भी कुछ लाभ न हुआ। तब आयर्लैण्ड के सब लोगों ने यह निश्चय किया कि, जब

* Boycott=To shut out from all social and other intercourse.

अंगरेज-जमीदार किसी आयरिश-किसान को बे दखल करे तब उस खेत को कोई भी दूसरा मनुष्य न लेवै; जो इस नियम का पालन नहीं करेगा वह समाज से अलग कर दिया जायगा---उसका हुक्का पानी बंद कर दिया जायगा। दुर्भाग्य-वश इस नियम का प्रथम उल्लंघन कप्तान बायकाट नाम के एक साहब ने किया। तुरंतही वह समाज से अलग कर दिया गया। उसके खेतों में फ़सल काटने के लिये आयलैंण्ड में एक भी आदमी नहीं मिलता था। उसके नौकरों ने नौकरी छोड़ दी। उसके पत्र और तार नहीं पहुंच सकते थे। धर्मोपाध्याय की सहायता से भी वह वञ्चित हो गया था। इसी प्रकार, जो लोग उक्त नियम का भंग करते थे उन्हें सामाजिक दंड दिया जाता था। इसका वर्णन अंगरेजी के एक लेखक ने इस प्रकार किया है—"Boycotting means that a man is denied food & drink; that his cattle are unsaleable at fairs; that the smith will not shoe his horse nor the carpenter mend his cart; that old friends pass him by on the other side making the sign of the cross; that his children are hooted at the village school; that he sits apart like an outcaste in his usual place of public worship." इसका भावार्थ यह है:---बहिष्कृत मनुष्य का खान-पान बंद हो जाता है; उसके पशु मेलों में बिकने नहीं पाते; लुहार उसके घोड़े की नाल नहीं बांधता; बढ़ई उसकी गाड़ी को नहीं सुधारता; उसके पुराने दोस्त उससे घृणा करने लगते हैं; पाठशाला में उसके लड़कों की निंदा की जाती है; देवालय में वह पतित मनुष्य की तरह अकेला अपने स्थान पर बैठा रहता है।

इनसाइक्लोपीडिया नामक अंगरेजी ग्रंथ में लिखा है कि "Medicine was refused by a shop-keeper even for the sick child of a boycotted person. Sometimes no one could be found to dig a grave." अर्थात्, बहिष्कृत मनुष्य को अपने बीमार लड़के के लिये, दूकानदार के पास से, दवाई तक नहीं मिलती थी। कभी कभी तो मुर्दे के लिये कबर खोदने को आदमी तक नहीं मिलता था। उसी समय से 'बायकाट' अंगरेजी भाषा में व्यवहृत होने लगा है। सच है, जब अन्य उपायों से अपने कार्य की सफलता होती हुई नहीं देख पड़ती तब इसी एक राम-बाण से अपने बहुतेरे दुःखों का निवारण हो सकता है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं, जिनसे यह विदित होता है, कि भिन्न भिन्न देशों के लोगों को इसी एक उपाय से लाभ हुआ है।

पहला उदाहरण अमेरिका देश का है। स्वाधीनता प्राप्त करने के पहले वह अंगरेजों के अधीन था। उस देश के निवासियों को अपने राज्य-प्रबंध में किसी प्रकार का हक़ न था। अंगरेजों की अनियंत्रित और प्रजा-पीड़क राजसत्ता से दुःखित होकर, सन् १७६५—६६ ईस्वी में, अमेरिकन लोगों ने विदेशी वस्तु—विशेषतः इंग्लैंड देश की वस्तु—के त्याग और स्वदेशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा की। उन लोगों ने न्यूयार्क-शहर में एक मण्डली स्थापित की, जिसके द्वारा स्वदेशी वस्तु के व्यवहार करने की उत्तेजना दी जाती थी। इसका उल्लेख अमेरिका देश के इतिहास में इस प्रकार किया गया है:—

"The making of linen, of cloth from the wool, both of sheep and the beaver, of spades, hoes and scythes and other iron articles, of spirits, of paper hangings &c. was begun to be prosecuted with great ardour and activity, and these efforts of the mercantile and manufacturing community were warmly supported by the people at large; the productions of American Industry were bought with avidity; *it became the fashion among all classes to appear dressed in clothes of the country*; and it is related that the general zeal for promoting the native woollen manufacture even gave rise to a resolution against eating lamb or buying meat from any butcher who should kill lambs." भावार्थ:—ऊनी और सूती कपड़े, फावड़ा, कुदाली, हंसिया आदि लोहे की चीजें बहुतायत से बनने लगीं। व्यापारियों और कारखानेवालों को सर्व-साधारण लोगों की ओर से सहायता और सहानुभूति बहुत मिलती थी। अमेरिका देश की बनी हुई वस्तु बड़े चाव से खरीदी जाती थी। उस समय देशी कपड़े पहिरने ओढ़ने का, सब लोगों में, रवाज (फैशन) हो गया था। देशी-ऊनी कपड़े के संबंध में उन लोगों का उत्साह इतना बढ़ गया था, कि उन लोगों ने भेड़ का मांस खाना छोड़ दिया और यह निश्चय किया कि यदि कोई कसाई भेड़ मारेगा तो उसके पास से कोई आदमी गोश्त न खरीदे।

दूसरा उदाहरण इटाली देश का है। जिस समय वह आस्ट्रिया देश के अधीन था उस समय इटालियन लोगों ने, विदेशी अधिकारियों को बहिष्कृत करके, राज्यप्रबंध के काम में बड़ी कठिनाई उत्पन्न कर दी थी। वेडरबर्न साहब कहते हैं कि, यदि हिंदुस्थानी भी इसी

उपाय का स्वीकार करैं तो अंगरेजों को हिंदुस्थान के राज्य का प्रबंध करना बड़ा कठिन हो जायगा। परंतु सम्प्रति हिन्दुस्थान के लोग अपने विदेशी राजसत्ताधिकारियों को बहिष्कृत करना नहीं चाहते; वे उन्हीं लोगों की सहायता से अपनी उन्नति करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अतएव अंगरेजों को उचित है कि वे शीघ्र ही सचेत हो जाँय और हिन्दुस्थानियों की प्रार्थना पर ध्यान दें, और वे जो कुछ कहते हैं उसको क़बूल करें। इससे दोनों देशों के लोगों को सुख होगा।

तीसरा उदाहरण चीन देश का है। चीनियों के साथ अमेरिका के लोग बहुत बुरी तरह का बर्ताव करते थे; अतएव उन लोगों ने, हाल ही में, अमेरिका देश की बनी हुई वस्तु के त्याग का उद्योग आरंभ किया है। इसका फल यह हुआ कि चीनियों को खुश करने का, अमेरिका की गवर्नमेन्ट, यत्न कर रही है। इसके संबंध में पायोनियर-पत्र लिखता है कि " चीनियों के बायकाट से यदि अमेरिका के व्यापार में कुछ हानि होगी तो चीनियों का इष्ट हेतु शीघ्र सफल हो जायगा; और चीनियों के विरुद्ध जो आईन अमेरिका में बनाये गये हैं वे शीघ्र ही रद कर दिये जायँगे।" यदि उक्त वाक्य में " चीनियों " के स्थान पर " हिन्दुस्थानियों " और " अमेरिका " के स्थान पर " इंगलैण्ड " लिख दिया जाय, तो पायोनियर के शब्दों ही से इस बात का निर्णय हो सकता है कि, हम लोगों के स्वदेशी-आन्दोलन और विदेशी वस्तु के त्याग का परिणाम क्या होगा।

चौथा उदाहरण खुद हमारे अंगरेज महाराज का है। इन लोगों ने तो, एक समय, अपने निज के व्यापार के लाभार्थ, बहिष्कार (बायकाट) से भी अधिक तीव्र— अत्यंत अनुचित— उपायों का अवलंबन किया था। प्राचीन समय में भारतवर्ष कारीगरी के कामों के लिये बहुत प्रसिद्ध था। उस समय यहां के बने अनेक पदार्थ इंगलैण्ड और अन्य देशों को भेजे जाते थे। इंगलैण्ड के लोग हमारे व्यापार की बराबरी नहीं कर सकते थे। तब उन लोगों ने क़ानून बनाकर, हिन्दुस्थानी वस्तुओं पर बहुत भारी कर लगाकर, हमारे व्यापार को अपने देश से बहिष्कृत कर दिया। इस विषय की चर्चा "अंगरेजों ने हमारा

व्यापार कैसे बरबाद किया" इस शीर्षक के लेख में स्वतंत्र रीति से की जायगी। वर्तमान समय में भी, मिस्टर चेंबरलेन इंग्लैण्ड में 'स्वदेशी व्यापार की रक्षा' के तत्व पर ही जोर दे रहे हैं।

सारांश, आयर्लैण्ड, अमेरिका, इटाली, चीन और इंगलैण्ड देशों के उदाहरणों को देखकर भी यदि हम लोग न चेतैं तो हमारे समान अभागे और कोई न होंगे। प्रजा कितनी भी दुर्बल हो—वह निःशस्त्र क्यों न हो—यदि वह दृढ़निश्चय और ऐक्यभाव से कुछ करना चाहे तो सब कुछ साध्य हो सकता है। वह अन्यायी शासनकर्ताओं को और अविचारी राज-सत्ताधारियों को भी राह पर ला सकती है। यदि हम लोग विदेशी वस्तु—विशेषत: इंगलैण्ड देश में बनी हुई वस्तु—का व्यवहार न करैं; और जब विदेशी वस्तु की अत्यंत अवश्यकता हो तब पहिले एशिया खंड के देशों की बनी हुई चीजों को—जापान, चीन, स्याम, काबुल, फ़ारस, अरब आदि देशों की बनी हुई चीजों को-पसंद करैं; जब इन देशों में बनी हुई चीजों से भी हमारा काम न चलै तब अमेरिका, जर्मनी, फ्रान्स, रशिया आदि देशों की बनी हुई चीजों का व्यवहार करैं; परंतु किसी हालत में, इंगलैण्ड की बनी हुई, किसी वस्तु का, भूलकर भी, स्वीकार न करैं; तो हमारा यह कार्य आईन के प्रतिकूल कदापि नहीं कहा जा सकेगा। इतनाही नहीं, किन्तु हम यह कहते हैं, कि आईन के अनुसार हमको अपने इस कार्य से कोई भी पराङ्मुख नहीं कर सकेगा। हां, हम जानते हैं कि राजा के विरुद्ध बल करना बे क़ायदा है—गुनह है; परंतु हमें जो चीज पसंद है उसका स्वीकार करने, और जो चीज नापसंद है उसका अस्वीकार करने, के काम में हम खुद अपने मालिक हैं—हम अपने मन के राजा हैं—हमें कोई रोक नहीं सकता। जब कि हमारी सरकार हमारी प्रार्थना पर कुछ ध्यान नहीं देती तब हम उनके देश की बनी हुई चीजें खरीदकर, अपने द्रव्य से, उनके जातिभाई व्यापारियों का लाभ क्यों करैं? जिस देश के लोग हमारी प्रार्थनाओं पर कुछ ध्यान नहीं देते उस देश के लोगों का माल न लेकर, उनके संबंध में, हम अपनी तिरस्कारबुद्धि क्यों न व्यक्त करैं? इसमें संदेह नहीं कि जो लोग

हमारी कुछ भी नहीं सुनते उन्हीं लोगों का राज्य, इस समय, हमारे देश में है; परंतु क्या इससे यह बात सिद्ध होती है कि हम लोग, स्वयं अपनी हानि करके, उन लोगोंही के व्यापार की सहायता करते रहें ? नहीं, कदापि नहीं।

इस संसार में यह बात प्राचीन समय से चली आ रही है कि, एक जाति अन्य जाति पर अपना अधिकार जमाने का यत्न करती है; एक समाज अन्य समाज पर अपनी प्रबलता स्थापित करने का उद्योग करता है; एक देश अन्य देश पर अपनी प्रभुता जमाने का उपाय रचता है। जब दुर्भाग्य-वश कोई एक देश किसी दूसरे देश के अधीन हो जाता है तब पराधीन-प्रजा को इस बात का विचार करना ही पड़ता है कि प्राचीन स्वत्वों की रक्षा किस प्रकार की जाय और नूतन स्वत्व किस प्रकार प्राप्त किये जाँय। जबसे भारतवासी अपनी स्वाधीनता को खोकर पराधीन हो बैठे तबसे उन्हेंभी इस बात का विचार करना पड़ा। मुसलमानों के समय में जब यह देश पराधीन हुआ था तब सिर्फ हमारी राजसत्ता ही छीन ली गई थी—तब हमारा व्यापार हमारे ही हाथ में था, वह नष्ट नहीं हुआ था। परंतु अंगरेज़ों के राज्य में हमारी राजसत्ता के साथही हमारे व्यापार का भी सर्वथा नाश हो गया है। स्मरण रहे कि अंगरेज लोग केवल राज्यकर्ता ही नहीं हैं, किन्तु वे व्यापारी भी हैं; वे केवल क्षत्रियही नहीं हैं, किन्तु वे वैश्य भी हैं। इन्हीं दोनों वृत्तियों के योग से, इस देश में, उनकी राज-नीति तथा व्यापारनीति बनी है। इस समय हम लोग, राजनैतिक दृष्टि से, तथा व्यापार में, सर्वथा इंगलैण्ड के अधीन हैं। ऐसी अवस्था में, जब कि अंगरेजों में दो प्रकार की वृत्तियों का योग हुआ है, अर्थात् वे क्षत्रिय (राज्यप्रबंधकर्ता और शासक) हैं और वैश्य (वणिक, व्यापारी) भी हैं; और जब कि हमारे आन्दोलन का असर, हमारी पराधीन प्रजा की पुकार का असर, हमारी याचकवृत्ति का असर, राज्यकर्ताओं की क्षात्रवृत्ति पर कुछ भी नहीं होता; तब हम लोगों को उनकी वैश्य-वृत्ति—अर्थात् व्यापार-विषयक उनकी स्वार्थ-बुद्धि—पर आघात करना चाहिए। यही

बात अन्य शब्दों में इस प्रकार कही जा सकती है, कि अब हम लोगों को अपनी याचकवृत्ति का त्याग करके, अपने दुर्बल वचनों से राज्यसंबंधी हक़ों की भीख मांगने की आदत छोड़ देना चाहिए; और इसके बदले अपने शक्तिमान हाथों से अपनी उन्नति का उद्योग करना चाहिए। इंगलैण्ड देश की बनी हुई चीजों को ख़रीदकर जो करोड़ों रुपये हम हर साल अंगरेजों को दे देते हैं वे स्वदेशी वस्तु के व्यवहार से स्वदेशभाइयों को देने चाहिए।

कोई कहेंगे कि इस समय हमारे देश में सब प्रकार की चीजें नहीं बनतीं; ऐसी अवस्था में कुछ विदेशी माल लेना ही पड़ेगा। हां, इसमें संदेह नहीं कि जबतक हमारे देश में सब प्रकार की चीजें बनने न लगें तबतक कुछ न कुछ विदेशी चीजें लेना ही पड़ेंगी; परंतु हम कहते हैं कि जब जब आप लोगों को कुछ विदेशी वस्तु लेना हो तब तब इस बात का स्मरण रखिये कि वह वस्तु, राजमद से जिनकी आंखें धुंध हो गई हैं और जो हमारी प्रार्थना पर कुछ ध्यान नहीं देते, उनके देश की— अर्थात् इंग्लैंड की—बनी हुई न हो; वह वस्तु इंग्लैंड के सिवा और किसी देश की हो। वास्तव में यह एक प्रकार का व्यापार-युद्ध ही है। इस युद्ध में शस्त्रास्त्रों की जरूरत नहीं; जरूरत है सिर्फ हमारे दृढ़ निश्चय, ऐक्यभाव और निस्सीम देशभक्ति की। इस युद्ध में हमको जितनी सफलता प्राप्त होगी उतनाही हमारे देश का कल्याण होगा। जब हम एक पैसे की ··· कोई स्वदेशी वस्तु खरीदेंगे तब उतनाही हमारे देश का लाभ होगा। परिणाम हम लोगों को इष्ट है; क्योंकि हम इस व्यापार-युद्ध से यह करना चाहते हैं कि, यद्यपि हम लोग अपने राज्यकर्त्ताओं स्वच्छन्द, बेपरवाह और अनुचित बर्ताव को रोक नहीं सकते, तथा हम लोग अपने राज्यकर्ताओं के देशभाइयों (अर्थात् अंगरेजों) के करोड़ों रुपयों के हिन्दुस्थानी व्यापार को मिट्टी में मिला सकते हैं। यदि हिन्दुस्थान के सब लोग यह निश्चय करलें, कि हम स्वदेशी वस्तु ही का व्यवहार करेंगे; और जब कोई स्वदेशी वस्तु न मिल सकेगी तब किसी अन्य देश की लेंगे, इंगलैंण्ड की कदापि न लेंगे; तो, पायोनियर ने अमेरिकन लोगों के संबंध

में जो कुछ ऊपर लिखा है वही अंगरेजों के संबंध में भी हमको लिखना पड़ेगा। अर्थात् अंगरेजों को हिन्दुस्थानियों की प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देना पड़ेगा।

कोई कहेंगे कि यदि हम स्वदेशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा करें तो इस प्रतिज्ञा का पालन पूर्ण रीति से नहीं हो सकेगा; क्योंकि इस समय हमारे देश में सब प्रकार का माल तैयार नहीं होता। अतएव, प्रथम हम लोगों को स्वदेशी माल पैदा करने का यत्न करना चाहिए; और जब सब प्रकार का स्वदेशी माल बनने लगेगा तब हम स्वदेशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा करेंगे, क्योंकि तभी हमारी प्रतिज्ञा का पूर्ण रीति से पालन हो सकेगा। इस दलील में यह बात सच है कि इस समय हमारे देश में सब चीजें नहीं बनतीं। जो चीजें वर्तमान समय में यहां बनती हैं उन्हींके व्यवहार की प्रतिज्ञा करने से जो लाभ होगा उसका उल्लेख ऊपर किया गया है; परंतु जो लोग यह कहते हैं कि जबतक सब चीजें अपने देश में बनने न लगें तबतक स्वदेशीवस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा करने से कुछ लाभ नहीं, उन लोगों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि स्वदेशी वस्तु का व्यवहार जितने अंश में किया जायगा उतनाही उससे लाभ होगा, उससे किसी प्रकारकी हानि होने का डर नहीं है। भगवद्गीता में, भगवान श्रीकृष्णने अर्जुन को उपदेश करते हुए यही कहा है कि—"नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते। स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥" स्वदेशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा भी इसी प्रकार की है। इस प्रतिज्ञा का पालन जितना किया जायगा उतनाही उससे हमारे देश का कल्याण होगा।

सारांश, स्वदेशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा का पालन बहुत दिनों तक करते रहने ही से हमारा इष्ट हेतु सिद्ध होगा। जो लोग यह कहते हैं कि, जब सब प्रकार का देशी माल बनने लगेगा तब हम देशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा करेंगे, वे लोग उस आदमी से कम मूर्ख नहीं हैं जो यह कहता है कि जब मुझे तैरना आ जायगा तब मैं पानी में पैर रक्खूंगा! ऐसे लोगों को सोचना चाहिए कि जब सब प्रकार का देशी माल तैयार होने लगेगा

तब उसके व्यवहार की प्रतिज्ञा करने की आवश्यकता ही क्या है? सच बात तो यह है, कि जबतक हमारे देश में सब प्रकार की चीजें बनने नहीं लगी हैं तभीतक उनके व्यवहार की प्रतिज्ञा करने की अत्यंत आवश्यकता है; क्योंकि अर्थशास्त्र का यही सिद्धान्त है कि जबतक किसी वस्तु की मांग नहीं बढ़ती तबतक उसकी आमदनी भी नहीं बढ़ती। किसी देश में बहुतसी चीजें तभी तैयार होती हैं जब कि उनके बनानेवालों को, उस देश के राजा या प्रजा की ओर से, उत्तेजन दिया जाता है। यह बात सब लोगों को विदित है कि हमारे राजा की ओर से स्वदेशी व्यापार की उन्नति के लिये उत्तेजन पाने की संभावना बहुत कम है। अब यदि प्रजा की ओर से कुछ उत्साह न दिया जाय, और यदि सब लोग यही कहने लगें कि जब देशी चीजें बनेंगी तब हम उनका व्यवहार करेंगे, तो इस देश में देशी वस्तु के बनने की आशा कदापि नहीं की जा सकती। हम जानते हैं कि आज देशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा करने से कलही हमारे देश में देशी वस्तु का बाजार गरम न हो जायगा। हम जानते हैं कि हमारी प्रतिज्ञा का फल, योगाभ्यास के "अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिं" इस तत्व के अनुसार, बहुत दिनों के बाद दिखाई देगा। इसीलिये हमारी यह प्रार्थना है कि हमारे सब देश-भाइयों को अभीसे देशी वस्तु के व्यवहार की दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

उक्त आक्षेपों का समाधान एक उदाहरण से भली भांति हो जायगा। देखिये, कुछ सरकारी अफ़सरों की यह इच्छा देख पड़ती है कि महा[illegible] ब्राह्मणों को सरकारी नौकरी न दी जाय। परंतु महाराष्ट्र-ब्राह्मणों के सि[illegible] अन्य जाति के बहुतसे बुद्धिमान, शिक्षित और होशियार आदमी नहीं मिल[illegible] अतएव सरकारी नौकरियों के देने में प्रायः इस नियम का पालन किय[illegible] जाता है, कि जहांतक हो सके प्रथम महाराष्ट्र-ब्राह्मणों को कोई जगह न दी जाय। पहले किसी युरेशियन, क्रिश्चियन, मुसलमान, पारसी, कायस्थ या किसी अन्य जाति के मनुष्य को जगह दी जाय; और जब इतने पर भी कोई न मिले तब महाराष्ट्र-ब्राह्मण को जगह दी जाय। इस उपाय से, यद्यपि एक दो ही दिनों में सरकारी नौकरी से सब महाराष्ट्र-ब्राह्मणों का

लोप नहीं हो सकता; तथापि इसमें संदेह नहीं कि कालांतर में सरकार का हेतु अवश्य सफल होगा और प्रायः सब महाराष्ट्र-ब्राह्मण सरकारी नौकरी से अलग कर दिये जायँगे। स्वदेशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा करनेवालों को उक्त नियम से कुछ शिक्षा लेनी चाहिए। उन लोगों को भी उक्त सरकारी नियम ही का अवलंब करना चाहिए। अर्थात् प्रथम स्वदेश में बनी हुई वस्तुओं का व्यवहार किया जाय; जब वे न प्राप्त हों तब एशिया खंड के किसी देश की बनी हुई वस्तु का व्यवहार किया जाय; जब वह भी प्राप्त न हो तब अमेरिका और यूरप के किसी भी देश की वस्तु का व्यवहार किया जाय, परंतु इंगलैंड देश की बनी हुई किसी भी वस्तु का स्वीकार न किया जाय। इस उपाय से हमारे कार्य की सफलता अवश्य हो जायगी।

यह बात प्रसिद्ध है कि, इस समय, हमारे देश में सब प्रकार की चीजें नहीं बनतीं; परंतु इससे हम लोगों को निराश और निरुत्साह न होना चाहिए। यदि सब प्रकार की चीजें नहीं बनती हैं, तो क्या जो चीजें इस समय बनती हैं उन्हींके व्यवहार का आरंभ हम लोगों को न करना चाहिए? यदि एकदम सब चीजें नहीं बन सकतीं तो क्या धीरे धीरे हम लोगों को अपनी प्रतिज्ञा का पालन न करना चाहिए? यदि आपकी, यथार्थ में, यही इच्छा है कि इस देश में सब प्रकार की चीजें बनने लगें तो उपाय यही है कि जो चीजें इस समय अपने देश में बनती हैं उन्हींको काम में [illegible] उनके सिवा अन्य किसी विदेशी वस्तु का स्वीकार न कीजिये। [illegible]पाय के अवलंब से, थोड़ेही समय में, हमारे देश में, और और सब चीजें [illegible]नने लगेंगी। यह उपाय सर्वथा निरपवाद तथा निर्भय है। यह साध्य और [illegible]स्कर भी है; पर इसमें दृढ़ बल और निश्चय की आवश्यकता है। यदि इस देश के सब लोग यही निश्चय करलें, कि हम केवल स्वदेशी वस्तु का व्यवहार करेंगे, तो देश में एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो जायगी। सारांश, स्वदेशी वस्तु का स्वीकार और विदेशी वस्तु का त्याग किये बिना हमारे देशभाइयों की वर्तमान दशा में कदापि सुधार होने की आशा नहीं की जा सकती। स्मरण रहे कि कल्याण करनेवाले किसी भी मनुष्य की दुर्गति नहीं होती। भगवद्गीता में लिखा है कि—"नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।"

कोई कोई कहते हैं कि स्वदेशी वस्तु-व्यवहार के आन्दोलन में किसी प्रकार का राजनैतिक (Political) स्वरूप नहीं आने देना चाहिए—उसका केवल औद्योगिक विषयों ही से संबंध रहे—'स्वदेशी' और 'बायकाट' ये दो भिन्न भिन्न विषय हैं। परंतु यह निरी भूल है। यह आंदोलन साक्षात् राजनैतिक न हो तो न सही; परंतु इसमें संदेह नहीं कि हमारे नायकों की यही इच्छा है कि इस आंदोलन का हमारे राज्यकर्ताओं की वर्तमान राजनीति पर कुछ असर पड़े—इस आंदोलन से हमारे राजमदांध सरकारी अधिकारियों की आंखें थोडी भी खुल जाँय और वे हमारी उचित प्रार्थनाओं पर कुछ ध्यान देने लगें। इस प्रकार, यह आंदोलन अप्रत्यक्ष रीति से राजकीय कहा जा सकता है—इस बात को प्रकट कर देने से हमारी कुछ हानि नहीं; और उसको गुप्त रखने से हमारा कुछ लाभ भी नहीं। हां, यह बात सच है कि बाहर से इस आन्दोलन के दो स्वरूप हैं; परंतु रूप की भिन्नता से वस्तुस्थिति में कुछ भेद नहीं होता। स्वदेशी वस्तु का व्यवहार और विदेशी वस्तु का त्याग—ये दोनों एक ही विषय के भिन्न भिन्न रूप हैं।

इस लेख में 'बहिष्कार' को 'योग' की उपमा दी गई है। अब इस बात का विवेचन किया जाता है कि उक्त 'बहिष्कार-योग' का अभ्यास किस प्रकार किया जाय—इष्ट हेतु की सफलता के लिये किन किन साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए। 'योग' का स्वरूप और उसके 'अभ्यास का मार्ग', ये दोनों भिन्न भिन्न बातें हैं। कैसाही 'योग' क्यों न हो—चाहे 'धार्मिक' योग हो चाहे 'राजकीय'—उसकी सिद्धि के लिये दृढ़ निश्चय और धैर्य की आवश्यकता है; क्योंकि उसकी सिद्धि में अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं। जब कोई मनुष्य किसी योग का अभ्यास करने लगता है तब उसको उस योग से भ्रष्ट करने के लिये भूत, पिशाच, राक्षस आदि भयंकर रूप धारण करके भयभीत करने का उद्योग करते हैं। इसी प्रकार 'बहिष्कार-योग' के अभ्यास करनेवालों को भी बहुतेरे भूतों, राक्षसों और पिशाचों ने भयभीत करने का यत्न किया है। और जबतक हम लोग बहिष्कार योग का अभ्यास करते रहेंगे तबतक हमारे

पीछे इसी प्रकार का भय बना रहेगा। विदेशी वस्तु के—विशेषतः इंगलैण्ड की बनी वस्तु के—त्याग की प्रतिज्ञा को सुनतेही गोरे अखबारों और कुछ गोरे अफ़सरों ने अपना भयानक रूप प्रकट किया। बंगालियों को 'बहिष्कार-योग' से भ्रष्ट करने के लिये सरकार ने सरक्यूलरों की झड़ी लगा दी और अपने लठदार शासन के बल पर प्रजा की उचित प्रतिज्ञा के भंग करने का प्रयत्न आरंभ किया। परंतु जिस प्रकार सच्चा 'योगी' वही है जो किसी भूत, पिशाच और राक्षस के उपस्थित किये हुए विघ्नों की परवा न करता हुआ, धैर्य और दृढ़ निश्चय से अपना 'अभ्यास' करता चला जाता है और अंत में सफल-मनोरथ होता है; उसी प्रकार सच्चा 'देशभक्त' वही कहलावेगा जो अपने 'बहिष्कार-योग' के अभ्यास में, किसी गोरे अखबार या किसी गोरे अफ़सर की परवा न करता हुआ अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेगा। जब हमारे विदेशी वस्तु के त्याग से अंगरेज़-व्यापारियों का कुछ नुक़सान होने लगेगा तब अंगरेज़-सरकार की आंखें अवश्य खुलेंगी; क्योंकि अंगरेज़ी-राज्य और अंगरेज़ी-व्यापार का बहुत घना संबंध है—इन दोनों की आत्मा एक ही है। उस समय, हमारी सरकार, अपने जातिभाइयों के व्यापार की रक्षा के हेतु, हमारी प्रार्थनाओं पर अवश्य ध्यान देगी। हम लोगों की इच्छा अवश्य पूर्ण होगी। अतएव बहिष्कार-योग की सिद्धि का मुख्य साधन यही है कि, किसी प्रकार के विघ्नों से भयभीत न होकर दृढ़ता से अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिए।

---

## यह समय कभी न कभी आनेही वाला था।

हम प्रस्तुत विषय का जितना अधिक विचार करते हैं, उतनाही अधिक हमारा विश्वास दृढ़ होता जाता है, कि वर्तमान स्वदेशी आन्दोलन का जोश, किसी क्षुद्र जलाशय में उत्पन्न होनेवाली क्षणिक लहर के समान, चञ्चल और अनस्थिर नहीं है; किन्तु वह इस देश की उन्नति का एकमात्र चिरस्थायी साधन है। गोरे अखबारों का यह

आक्षेप है कि जिस आंदोलन की उत्पत्ति वंग-भंग जैसे क्षुद्र और क्षणिक विषय से हुई है वह चिरस्थायी कैसे हो सकता है ? इसका उत्तर यह है कि इस आंदोलन का बीज, वंगभंग के पूर्वही, इस देश में, बोया गया था—वह बीज-रूप से पहलेही उपस्थित था। वंगभंग के कारण उसको गति प्राप्त हुई—वंगभंग के कारण उस बीज-रूपी आन्दोलन का सब देश में अङ्कुर उग आया। अर्थात् यह आन्दोलन वंगभंग से उत्पन्न नहीं हुआ; वंगभंग, इस समय, इस आन्दोलन के प्रसार का कारण मात्र हुआ। जिस प्रकार कुरु-क्षेत्र की रणभूमि पर खड़े रहनेवाले दोनों पक्षों के वीरों के नाश के लिये अर्जुन केवल निमित्तमात्र कारण हुआ—यथार्थ कारण संसार का संहार करनेवाला परमात्मा का कालस्वरूपही था—उसी प्रकार वंगभंग प्रस्तुत आन्दोलन का केवल नैमित्तिक कारण है, यथार्थ कारण **वर्तमान समय** ही है। हमारा यह विश्वास है कि यद्यपि वंगभंग का प्रश्न, इस समय, उपस्थित न किया जाता तथापि यह प्रसंग—यह आन्दोलन—आज नहीं तो कल, कभी न कभी, आनेही वाला था।

गत दस बारह वर्ष में, दुनिया के सब देशों में, जो विशेष घटनाएं हुई हैं उनकी ओर, जिन लोगों ने ध्यान दिया होगा—जिन लोगों ने उन घटनाओं का सूक्ष्म रीति से विवेचन किया होगा—उनको यह बात देख पड़ेगी कि इस समय एक विशेष भाव से—एक विशेष कल्पना से—सारी दुनिया का ढंगही बदलता जारहा है। अमेरिका, चीन, जापान, आस्ट्रेलिया, नटाल, ट्रान्सवाल, .... जर्मनी और खुद इंग्लैण्ड की, गत दस बारह वर्ष की, सब घटनाओं को मथकर, यदि कोई एक विशेष बात जानना चाहे तो उसे यही देख पड़ेगा कि ये सब देश "स्वकीय का स्वीकार और परकीय का त्याग" इसी एक कल्पना—इसी एक भाव—इसी एक सिद्धान्त-रूपी केन्द्र के चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं। अमेरिका में चीनियों को न रहने देने का जो यत्न किया गया उसका कारण क्या है ? आस्ट्रेलिया में जापानियों और हिन्दुस्तानियों को न रहने देने का कारण क्या है ? कुछ दिन हुए, बंबई के मशहूर आगाखां साहब आस्ट्रेलिया को गये थे। उस समय उस देश के निवासियों ने इतने बड़े

मुसलमान-नायक को भी वहां न आने देने का यत्न किया था। आगाखां बड़े श्रीमान सरदार हैं। आस्ट्रेलिया के व्यापारियों को उनसे बहुत लाभ होने की संभावना थी। इस प्रकार के फ़ायदे की कुछ भी परवा न करके आस्ट्रेलिया के निवासी हिन्दुस्थानियों, चीनियों, और जापानियों के साथ अपना सम्बन्ध रखना नहीं चाहते, इसका कारण क्या है? आस्ट्रेलिया से इंग्लैण्ड को जिस जहाज़ में डांक भेजी जाती है उसपर हिन्दुस्थानी खलासी न रक्खे जांय—इसका कारण क्या है? आस्ट्रेलिया की मनुष्य-संख्या बहुत नहीं है; वहां मज़दूर कम हैं; और उपजाऊ भूमि बहुत है। इतने पर भी वे लोग विदेशियों से संबंध क्यों नहीं रखते? वे जानते हैं कि हमारे वर्तमान कार्य का परिणाम भविष्यत् में अपनी सन्तानों पर अच्छा न होगा। वे इस बात का विचार करते हैं कि हमारा धन कहां जाता है—और वहां जाकर वह हमें किस प्रकार हानि पहुंचावेगा। ट्रान्सवाल में सोने की खानों में काम करने के लिये चीनी मज़दूर भरती किये जांय या नहीं, इस विषय का वाद-विवाद इंग्लैण्ड में क्यों किया जाता है? दक्षिण-आफ्रिका में अंगरेजों का राज्य है। वहां काले आदमियों (हिन्दुस्थानियों) के साथ जैसा बर्ताव किया जाता है सब लोगों को विदित है। यथार्थ में वहां काला आदमी अत्यन्त पतित और हीन समझा जाता है। इसका कारण क्या है? खुद इंग्लैण्ड में, मिस्टर चेम्बरलेन और बाल्फोर साहब अंगरेजी-व्यापार रक्षा के लिये जो प्रयत्न कर रहे हैं उसका रहस्य क्या है? Made in Germany जर्मनी में बनाया गया—यह वाक्य किसी वस्तु पर देखते ही अंगरेजों का दिमाग़ बिगड़ क्यों जाता है? उक्त प्रश्नों का उत्तर एक ही है—"स्वकीय का स्वीकार और परकीय का त्याग"। इस विचार—इस कल्पना—का असर पहले पहल यूरप के सब देशों में हुआ; अनंतर उस विचार की लहरें एशिया-खंड की ओर झुकीं। जापान के विजय से उस विचार की लहरें और भी अधिक उत्तेजित हुईं। इसी विचार-परिवर्तन के कारण चीनियों ने अमेरिका के व्यापार को अपने देश से बहिष्कृत किया। यह विचार-तरंग, आज नहीं तो कल, कभी न कभी, भारतवर्ष में भी आनेही वाली थी—इसके स्वाभाविक प्रवाह को कोई भी रोक

न सकता। बंगभंग ने सिर्फ इतनाही काम किया कि उक्त विचार-तरंग को, इसी समय, प्रादुर्भूत होने का—प्रकट होने का—अवसर दिया। यह तो केवल कालमाहात्म्य है—समय का हेरफेर है। उसके प्रभाव को कौन रोक सकता है? जिस विचार ने—जिस कल्पना ने—दुनिया के सब देशों में हलचल मचा दी; जिस सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक देश के निवासी "स्वजन का स्वीकार और परजन का त्याग" कर रहे हैं; क्या उस कल्पना का—उस विचार का—उस सिद्धान्त का प्रभाव हिन्दुस्थानियों पर कुछ भी न होगा? यह परिस्थिति हिन्दुस्थानियों ने स्वयं उत्पन्न नहीं की है; किंतु वह यूरप से एशिया के कुछ देशों में —और उन देशों से हिन्दुस्थान में—आपही आप स्वाभाविक रीति से आ पहुंची है। अब उस परिस्थिति में हम लोग बँध से गये हैं—उससे हमारा छुटकारा हो नहीं सकता। अतएव उससे लाभ उठानाही हमारा प्रधान कर्तव्य है। जब दुनिया के सब लोग उक्त सिद्धान्त का अवलम्ब करके अपना अपना हित-साधन कर रहे हैं, तब क्या यही एक देश ऐसा अभागा है जिसके निवासी प्राप्त-परिस्थिति-वर्तमान समय—से अपनी कुछ भी भलाई न कर सकेंगे? क्या हिन्दुस्थान के लोग इतने मूर्ख, अज्ञानी और अभिमान-रहित हैं कि वे उक्त तत्व को मान्य न कर सकेंगे? क्या हम लोगों को इस बात का विचार न करना चाहिए कि हमारे घर का धन केवल हमारे स्वजनों ही को मिले—विदेशि[illegible] हाथ में न जाने पावे? जितना द्रव्य हम व्यय करते हैं यदि वह [illegible] हमारे स्वजनों को न मिले—यदि उसका कुछ भाग विदेशियों को भी देने का प्रसंग आवे—तो हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपना द्रव्य उन विदेशियों को कभी न दें जो हमारा अपमान करते हैं—जो हमारी प्रार्थना पर ध्यान नहीं देते—जो हमारे हक़ों का कुछ ख़याल नहीं करते—जो हमें सदा दासत्व में रखने की चेष्टा करते हैं; किन्तु हम अपना द्रव्य ऐसे विदेशियों को दें जो हमारा अपमान नहीं करते। अर्थात् प्रत्येक हिन्दुस्थानी को स्वदेशी वस्तु के व्यवहार-द्वारा, अपना द्रव्य, अपने देश-भाइयों ही को देना चाहिए; यदि किसी स्वदेशी वस्तु के अभाव के

कारण विदेशी वस्तु की जरूरत हो तो, प्रत्येक हिन्दुस्थानी को यह निश्चय करना चाहिए, कि जिस इंग्लैण्ड देश के लोगों ने हमारे मुँह की रोटी छीन ली है, और जिस इंग्लैन्ड देश के लोग काले आदमियों को पशुतुल्य समझते हैं, उस देश की बनी कोई भी चीज हम न खरीदेंगे। जब विदेशी वस्तु की जरूरत ही होगी तब इग्लैण्ड के सिवा अन्य किसी देश की लेनी चाहिए। क्या दुनिया में अंगरेजों के सिवा और कोई लोग ही नहीं हैं? क्या दुनिया में इंग्लैण्ड के सिवा और कोई देश ही नहीं है? यदि है तो क्या इंग्लैण्ड के सिवा और किसी देश की बनी चीज़ लेना पाप है? नहीं; यह पाप तो है ही नहीं; किंतु यही, इस समय, प्रत्येक हिन्दुस्तानी का कर्तव्य है। यह तो एक नित्य के व्यवहार की बात है कि जो हमारा प्यार नहीं करता उसके साथ हम अपना संबंध रखना नहीं चाहते। जिसके मन में हमारे विषय में प्रेम नहीं उसके साथ संबंध रखना निंद्य माना जाता है। महाभारत के युद्ध के समय भगवान श्रीकृष्ण पांडवों के दूत बनकर कौरवों के पास गये थे। उस समय दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को भोजन के लिये बुलाया। भगवान् श्रीकृष्ण ने जो उत्तर दिया वह, इस समय, प्रत्येक हिन्दुस्थानी को ध्यान में रखना चाहिए:—

"संप्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च संप्रीयसे राजन्न चैवापद्गता वयम्॥"

अर्थात् भोजन का स्वीकार दो तरह से किया जाता है—पहले तो प्रेम से, दूसरे आपत्ति समय में। हे राजन् तुम हमारा प्यार नहीं करते; और हम भी कुछ आपत्ति में फँसे नहीं हैं। ऐसी अवस्था में भोजन का स्वीकार किस प्रकार किया जाय? अब हम यह जानना चाहते हैं कि, क्या इस देश के निवासियों पर ऐसी कुछ आपत्ति आई है जिससे उन लोगों को, अपने विषय में प्रेम-रहित विदेशियों ही की बनाई हुई चीजें खरीदने के लिये, मजबूर होना पड़ता है? आश्चर्य की बात है कि जिन लोगों के मन में हमारे विषय में घृणा और तिरस्कार का भाव भरा हुआ है उन्हीं लोगों के कारखानों की चीजें खरीदकर, हम अपने ही द्रव्य से,

उन लोगों की मानमर्यादा और शक्ति को बढ़ाने का उद्योग करें; किन्तु, स्वदेशी वस्तु को खरीदकर अपने द्रव्य से अपने ही देशभाइयों के हित की कुछ भी चिंता न करें !

---

## स्वदेशी वस्तु का स्वीकार और विदेशी वस्तु का त्याग—ये दोनों बातें एकही हैं। इस यत्न में सफलता प्राप्त करना हमारी शक्ति के बाहर नहीं है।

प्रस्तुत आन्दोलन का जो विवेचन ऊपर किया गया है उससे पाठकों को यह ज्ञात हुआ होगा कि **स्वदेशी वस्तु का स्वीकार** और **विदेशी वस्तु का त्याग**, यही दो बातें, इस आन्दोलन के, मुख्य प्राण हैं— यही दो बातें, इस आन्दोलन के, प्रधान तत्व हैं। यद्यपि ये बातें, बाहर से देखने में, भिन्न भिन्न देख पड़ती हैं—यद्यपि ये बातें, भिन्न भिन्न दो विषयों के समान, देख पड़ती हैं, और यद्यपि उनका वर्णन भिन्न भिन्न शब्दों में किया जाता है (और कदाचित इसीसे कोई कोई अपने को 'स्वदेशी' के अनुयायी और कोई कोई 'बहिष्कार' या 'बायकाट' के अनुयायी कहते हैं) तथापि, यथार्थ में, ये दोनों बातें एकही हैं— ये भिन्न भिन्न विषय नहीं हैं। 'स्वदेशी' और 'बायकाट' में तात्विक भेद कुछ भी नहीं है—ये एकही वस्तु के दो भिन्न भिन्न रूप हैं। यदि कोई एक वस्तु भिन्न भिन्न दो स्थानों से देखी जाय तो, देखनेवाले के स्थान में परिवर्तन होने के कारण, उस एकही वस्तु के भिन्न भिन्न दो रूप देख पड़ेंगे। इसी उदाहरण के अनुसार, वर्तमान आन्दोलन के भी, भिन्न भिन्न दो रूप देख पड़ते हैं। जिस दृष्टि से उसकी ओर देखिये उसीके अनुसार उसका रूप देख पड़ेगा। 'स्वदेशी' के अनुयायियों को केवल 'स्वदेशी वस्तु के स्वीकार और स्वदेशी वस्तु की उन्नति' ही का रूप देख पड़ता है और 'बायकाट' के अनुयायियों को केवल 'विदेशी वस्तु के त्याग' ही का रूप दिखाई देता है।

ज्ञानी लोगों को यह बात विदित है कि संसार की उत्पत्ति के लिये 'परमेश्वर' और 'माया' (शक्ति) दोनों की जरूरत है। अकेला परमेश्वर संसार की उत्पत्ति कर नहीं सकता—माया (शक्ति) की सहायता बिना परमेश्वर कुछ कर नहीं सकता; और अकेली माया (शक्ति) भी कुछ कर नहीं सकती। यद्यपि ये दोनों देखने में भिन्न भिन्न देख पड़ते हैं तथापि वे एक ही ब्रह्म-तत्व के दो रूप हैं। परमेश्वर और माया के इस सम्मिलित रूप के आधार पर ही नरनारी-नटेश्वर की मूर्ति कल्पित की गई है। उस मूर्ति में परमेश्वर और माया का रूप इतना सम्मिलित है कि देखनेवाला उन दोनों रूपों को विभक्त नहीं समझ सकता। तथापि उस मूर्ति की एक ओर खड़े होकर देखिये तो केवल 'परमेश्वर' का रूप दिखाई देगा, और यदि दूसरी ओर खड़े होकर देखिये तो केवल 'माया' (शक्ति) का रूप दिखाई देगा। ठीक यही दशा इस आन्दोलन की भी है। 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' ये दोनों बातें इतनी सम्मिलित हैं कि उनको कोई विभक्त नहीं कर सकता; तथापि एक ओर से देखा जाय तो केवल 'स्वदेशी' का रूप दिखाई देता है; और दूसरी ओर से देखा जाय तो केवल 'बहिष्कार' का रूप देख पड़ता है। संसार की उत्पत्ति के कार्य में परमेश्वर और माया (शक्ति) को विभक्त करना असम्भव है; ऐसा करने से संसार की उत्पत्ति में विघ्न होगा। इसी प्रकार अपने देश की उन्नति के कार्य में 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' को विभक्त करना असंभव है; ऐसा करने से देश की उन्नति में विघ्न होगा। हमारी समझ में, वर्तमान आन्दोलन की प्रधान शक्ति 'बहिष्कार' ही में है। जिस प्रकार माया (शक्ति) को पृथक् करने से संसार की उत्पत्ति हो नहीं सकती; उसी प्रकार 'बहिष्कार' को पृथक् करने से हमारा आन्दोलन शक्ति-रहित हो जायगा—उससे देश की उन्नति कदापि न हो सकेगी—इष्ट कार्य की कभी सिद्धता न होगी। अतएव, निदान व्यापार की दृष्टि से, हिन्दुस्थान में कुछ जान है—वह सजीव है—वह मृत नहीं है—यह बात सिद्ध करने के लिये हम लोगों को 'स्वदेशी वस्तु का स्वीकार' और 'विदेशी वस्तु का त्याग, इन दोनों बातों को हमारे आन्दोलन में शामिल करना चाहिए।

अंगरेज-व्यापारी हर साल तीस करोड़ का कपड़ा इस देश में बेच-

कर हमारा धन लूट ले जाते हैं। क्या इस बात से हमारा जी जलना न चाहिए? जिस मनुष्य का जी इस बात से नहीं जलता कि तीस करोड़ की हमारी सम्पत्ति केवल विलायती कपड़ा खरीदने में विदेश को चली जाती है, वह 'स्वदेशी' का अनुयायी कैसे हो सकता है? जो लोग यह कहते हैं कि इस देश में नई मिलें खोली जाँय, चरखों पर काम करनेवाले जुलाहों को उत्तेजन दिया जाय और नये नये कारखाने खोले जाँय; वे यदि विदेशी वस्तु का त्याग करने के लिये अपने देशभाइयों को उत्तेजित न करेंगे तो उनके प्रयत्नों से क्या लाभ होगा? जबतक हमारे देशभाई विदेशी वस्तु के त्याग की प्रतिज्ञा न करेंगे तबतक नई मिलों के खोलने से और चरखों पर काम करनेवाले जुलाहों को उत्तेजन देने से, या और और चीजों के कारखाने खोलने से, क्या लाभ होगा? विदेशी वस्तु के त्यागही में हमारी यथार्थ उन्नति की शक्ति है। यदि विदेशी वस्तु के संबंध में घृणा उत्पन्न होकर उसका त्याग ही न किया जायगा तो स्वदेशी वस्तु की मांग कैसे बढ़ सकेगी? यदि स्वदेशी वस्तु के संबंध में प्रेम उत्पन्न होकर उसकी मांग ही न बढ़ेगी तो बड़ी बड़ी मिलें और नये नये कारखाने किस प्रकार खुल सकेंगे? जब हमारे पूंजी-वालों को इस बात का दृढ़ विश्वास हो जायगा कि हम लोगों ने विदेशी वस्तु का त्याग कर दिया है तब वे लोग बड़ी बड़ी मिलें और नये नये कारखाने खोलने में एक भी दिन का विलम्ब न करेंगे। मिलों का व्यापार बहुत लाभदायक है। उस व्यापार में पूंजीवालों को बहुत नफ़ा मिलता है। जब वे लोग इस बात को जान लेंगे कि हमारे देश-भाई, किसी प्रकार की आपत्ति आने पर भी—किसी प्रकार का सङ्कट आने पर भी—विदेशी वस्तु का स्वीकार न करेंगे, वे केवल स्वदेशी वस्तु ही का स्वीकार करेंगे, तब इस देश के प्रत्येक शहर और गाँव में स्वदेशी वस्तु के नये नये कारखाने देख पड़ने लगेंगे।

यद्यपि विदेशी वस्तु के त्याग से लाभ के सिवा कोई हानि देख नहीं पड़ती, तथापि कुछ लोग विदेशी वस्तु के त्याग की प्रतिज्ञा करने से डरते हैं—वे अपने को 'बायकाट' या 'बाहिष्कार' पन्थ के अनुयायी कहलाने से हिचकते हैं। इसका कारण क्या है? वे लोग कहते हैं कि विदेशी वस्तु के

त्याग की प्रतिज्ञा से इस देश के अंगरेज-अधिकारी नाराज होंगे—हमारी दयालु सरकार अप्रसन्न होगी और मंचेष्टर के व्यापारी हमारे देशी माल पर कर लगवाकर इस देश के नये कारखानों को गिरादेने का प्रयत्न करेंगे; अतएव यह कार्य हम लोगों की शक्ति के बाहर है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि हमारे देशभाई, विदेशी वस्तु के त्याग की प्रतिज्ञा करके—बहिष्कार-योग का अभ्यास करके—अपने देश के नष्ट हुए व्यापार की उन्नति करना, अपने देश को दरिद्रता से मुक्त करना और अपने देश के स्वाधीन-गौरव को स्थापित करना अच्छा समझते हैं; या इस देश के अंगरेज-अफ़सरों की नाराजी, सरकार की अप्रसन्नता और मंचेस्टर के व्यापारियों की बंदर-घुड़की से भयभीत होकर देशद्रोही बनना पसंद करते हैं? क्या यह खेद और लज्जा की बात नहीं है कि ये लोग सरकार की अप्रसन्नता और अफ़सरों की नाराजी की तो इतनी परवा करें; परन्तु अपने देश की भलाई का कुछ भी विचार मन में न लावें? जो लोग स्वयं अपनी, अपने कुटुम्ब की, अपने पड़ोसी की, अपने समाज की और अपने देश की भलाई की कुछ भी चिन्ता न करके केवल विदेशियों को खुश करने का प्रयत्न करते हैं, वे देश के हितकर्ता नहीं कहे जा सकते। अंगरेजी भाषा में एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि "पहले तुम अपनी भलाई करो; फिर दूसरों की भलाई की चिन्ता करो"। हमारा यह आशय नहीं है कि जानबूझकर, किसी कारण बिना, इस देश के अंगरेज-अफ़सरों को या सरकार को या विलायत के लोगों को अप्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाय। नहीं; हमारा प्रयत्न केवल अपनी जातीयता—अपने राष्ट्रीयत्व—के अस्तित्व के लिये होना चाहिए। यदि अपनी जातीयता के अस्तित्व के प्रयत्न से—अपने राष्ट्र को सजीव रखने का उद्योग करने से—किसीका मन दुःखित हो—किसी की अप्रसन्नता हो—कोई नाराज हो—तो हमें उसकी परवा न करनी चाहिए। अपने पवित्र कर्तव्य के पालन से यदि किसीको बुरा लगे तो उसकी ओर ध्यान न देना चाहिए। किसी व्यक्ति वा समाज वा राष्ट्र का मन दुःखित न हो, इस हेतु की सिद्धि के लिये, क्या हम लोगों को अपने तीस करोड़ देशभाइयों के अस्तित्व का नाश कर डालना चाहिए? क्या उन लोगों को भूख से पीड़ित

होकर मरने देना चाहिए? क्या वर्तमान हीनता और सङ्कट के बड़े बड़े गड्ढों को और भी गहरे बनाकर उनमें अपने तीस करोड़ बांधवों को ढकेल देना चाहिए? पाठको, आपही इस विषय का विचार कीजिये। अब-तक नम्रतापूर्वक प्रार्थना करके, गिड़गिड़ाकर, भीख मांगने का जो प्रयत्न किया गया वह रत्तीभर भी सफल नहीं हुआ। क्या अब उसी उपाय का और भी अवलम्ब किया जाय? मान लीजिये, कि जब हमारे प्रस्तुत प्रयत्न से--विदेशी वस्तु के त्याग की हमारी प्रतिज्ञा से--इस देश के व्यापार और कारखानों की उन्नति होगी तब उस उन्नति को देखकर, मंचेस्टर के व्यापारी डाह से चिल्लाने लगेंगे और हमारी सरकार देशी वस्तु पर कर लगा देगी। अब हम यह जानना चाहते हैं, कि यदि हम विदेशी वस्तु का त्याग न करें, यदि हम स्वदेशी आन्दोलन न करें और यदि इस देश के व्यापार और कारखानों की उन्नति आपही आप हो जाय, तो क्या मंचेस्टर के व्यापारियों के मन में हमारी उन्नति के संबंध में डाह न उत्पन्न होगी? क्या वे लोग इस देश की वस्तु पर कर लगवाकर हमारे व्यापार को नष्ट करने का प्रयत्न न करेंगे? क्या इस बात की ज़िम्मेदारी ( Guarantee ) कोई ले सकता है? सच बात तो यह है कि अपनी राजसत्ता का दुरुपयोग करके भारत-वर्ष के व्यापार को नष्ट करने का अंगरेज़ लोगों ने जो प्रयत्न किया ( और जो भविष्य में किया जायगा ) उसका कारण, उन लोगों की अनुचित और अन्यायी स्वार्थ-बुद्धि ही है। जबतक उनकी यह स्वार्थ-बुद्धि, यह लोभ, क़ायम है तबतक वे लोग हमारे व्यापार और कारखानों की उन्नति से कदापि प्रसन्न न होंगे; वे हमारे व्यापार के नाश ही का प्रयत्न करेंगे; चाहे वह उन्नति हमारे 'स्वदेशी' से हो, चाहे 'बायकाट' से हो और चाहे बिना स्वदेशी और बिना बायकाट की सहायता के, आपही आप, हो। हां, इसमें सन्देह नहीं कि अन्त में इस स्वार्थ-बुद्धि और लोभ का परिणाम न तो इंग्लैण्ड को सुखदायक होगा और न हिंदुस्थान को। ऐसी अवस्था में यदि हम 'स्वदेशी' और 'बायकाट' की सहायता से अपने देश के व्यापार और कारखानों की उन्नति करने का प्रयत्न करें तो डर किस बात का है? जो परिणाम होने-वाला ही है वह तो होगा ही। फिर हम लोगों को अपने प्रयत्न से—

अपने पवित्र कर्तव्य से—पराङ्मुख क्यों होना चाहिए? हमारा तो यह दृढ़ विश्वास है कि जिस प्रकार अंगरेजों ने, अपनी अमलदारी के आरंभ में, इस देश के व्यापार और कारखानों को अनेक अनुचित और अन्यायी उपायों से नष्ट करने का प्रयत्न किया था, उस प्रकार के प्रयत्न करने का साहस, वे लोग, इस समय, बीसवीं सदी में, कदापि न करेंगे। क्योंकि इस समय दुनिया के सब देशों के विचारों में जो एक विशेष-भाव देख पड़ता है; और जिस विशेष-भाव का असर, एशिया-खंड के कई देशों पर होता हुआ, हिन्दुस्थान पर भी पड़ने लगा है; वह अंगरेजों के उक्त अनुचित और अन्यायी उपायों को कदापि सफल होने न देगा। इस वर्तमान समय के विचार-सागर का प्रवाह हमारे अनुकूल है। केवल हमारे दृढ़ निश्चय की आवश्यकता है। इस विषय का उल्लेख गत परिच्छेद में किया गया है। अतएव हमारी यह राय है कि यह उद्योग—यह प्रयत्न—हमारी शक्ति के बाहर नहीं है। यदि वर्तमान समय के विशेष-विचार—विशेष-भाव—की अनुकूलता पाकर हम लोग दृढ़ निश्चय से अपनी प्रतिज्ञा के पालन का प्रयत्न करें तो निस्सन्देह हमारा इष्ट हेतु सफल होगा। इतना प्रयत्न करने पर भी यदि किसी अपरिहार्य कारण से सफलता प्राप्त न हो तो भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेशानुसार "तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि" हम लोगों को शोक नहीं करना चाहिए। यदि हमारा उद्देश पवित्र है, हमारे विचार उचित हैं, हमारी प्रतिज्ञा योग्य है, हमारा निश्चय अटल है, हमारा प्रयत्न शुद्ध और सरल है और समय की अनुकूलता भी है; तो हमारे मनोरथों की सफलता होनी ही चाहिए। यदि न हो तो उसके विषय में खेद मानकर क्लैब्य दशा का स्वीकार करना उचित नहीं। जिस समय हमको अपने कर्तव्य-कर्म में कटिबद्ध होना चाहिए उस समय क्लैब्य दशा का स्वीकार करके हृदय की दुर्बलता प्रकट करना उचित नहीं। यही जानकर भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है "—क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ नैतत्वय्युपपद्यते। क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।"

सच है; जिन लोगों को अपने इष्ट कार्य की सफलता

करना है, जिन लोगों को अपने देश के व्यापार की उन्नति करना है, जिन लोगों को अपनी पवित्र आर्यमाता को निर्जीविता के कलङ्क से मुक्त करना है, उनके हृदय की दुर्बलता कदापि शोभा नहीं देती। यदि हम अपने हृदय की दुर्बलता को छोड़ दें और विदेशी वस्तु के त्याग की प्रतिज्ञा के पालन में दृढ़ निश्चय से प्रयत्न करते रहें तो स्वदेश की उन्नति का कार्य हमारी शक्ति के बाहर नहीं है।

---

## कांग्रेस और 'स्वदेशी'।

कोई कोई यह कहते हैं कि स्वदेशी आन्दोलन के नायकों का हेतु औद्योगिक नहीं है—वह राजनैतिक है; क्योंकि बंगाल प्रांत के जिन नायकों ने स्वदेशी आन्दोलन का आरम्भ किया है वही लोग कांग्रेस के अगुआ हैं और विदेशी वस्तु के त्याग का विषय, अर्थात् बायकट या बहिष्कार-योग, 'स्वदेशी' में शामिल होजाने से, इस देश के राजकर्मचारी अप्रसन्न हो गये हैं। अतएव यह आन्दोलन भी, राजनैतिक-आन्दोलन करनेवाली कांग्रेसही का, एक दूसरा रूप है। इस लिये हम लोग इस प्रकार के 'स्वदेशी' आन्दोलन में शामिल हो नहीं सकते। 'स्वदेशी' और 'बायकाट' के परस्पर सम्बन्ध का विवेचन गत परिच्छेद में किया गया है। अतएव उसको दोहराने की ज़रूरत नहीं। अब केवल इस [illegible] को सोचना चाहिए कि कांग्रेस और 'स्वदेशी' का यथार्थ सम्बन्ध क्या है।

पहले हमको इस बात का विचार करना चाहिए कि इस देश का राजा कौन है? साधारण लोग यही कहेंगे कि इंग्लैण्ड देश का राजा हमारा राजा है। पर इसमें सर्वांश सत्य नहीं है। इस देश की वर्तमान शासन-प्रणाली का सूक्ष्म रीति से निरीक्षण किया जाय तो पुलिस के एक अदना सिपाही से लेकर बड़े लाट साहब तक, प्रत्येक सरकारी अफ़सर, हम लोगों पर, राजा के समान, राज्य करता हुआ देख पड़ेगा। जब इंग्लैण्ड की ओर दृष्टि डाली जाती है तब यह देख पड़ता है कि हमारे बड़े लाट

साहब सेक्रेटरी आफ़ स्टेट के मातहत हैं, सेक्रेटरी आफ़ स्टेट पार्लिमेन्ट-सभा के मातहत हैं और पार्लिमेन्ट-सभा के मेम्बर बृटिश-निर्वाचकों के अधीन हैं। सारांश, इस देश में जो विदेशी राजसत्ता स्थापित हुई है वह किसी एक व्यक्ति के हाथ में नहीं है--उसके सूत्र अनेक व्यक्तियों के हाथ में हैं। अर्थात्, इस देश में, कोई एक राजा नहीं है—अनेक राजा हैं। स्वाधीन-देशों में इस शासन-प्रणाली से प्रजा का बहुत कल्याण होता है; परन्तु हिन्दुस्थान जैसे पराधीन देश में इस शासन-प्रणाली से प्रजा का कुछ भी कल्याण नहीं होता। यहां प्रजा को न तो कुछ हक़ हैं, न अधिकार है और न मान है। यहां जो अंगरेज-राजकर्मचारी हैं उन्हीं-के हाथ में सब राजसत्ता है—वही लोग यहां के राजा हैं। इंग्लैण्ड-देश का जो राजा है (और आईन के अनुसार जो इस देश का भी राजा है) उसकी सत्ता, क़ानून के द्वारा अत्यन्त मर्यादित करदी गई है। वह अपने मन से कुछ कर नहीं सकता। यथार्थ में उसको कुछ भी अधिकार नहीं है-वह केवल नामधारी राजा है! इसमें सन्देह नहीं कि राजा की सत्ता को इस प्रकार मर्यादित कर देने से इंग्लैण्ड की प्रजा का अत्यन्त हित हुआ है; परन्तु इस बात में भी सन्देह नहीं कि उक्त प्रणाली से इस देश की प्रजा पर अनेक बुरे परिणाम हुए हैं। सबसे बुरा परिणाम यही हुआ, कि इस देश की यथार्थ राजसत्ता विदेशी-निर्वाचकों और विदेशी-अफ़सरों के हाथ में चली गई। अर्थात् इस देश के गोरे अफ़सर और इंग्लैण्ड की पार्लिमेन्ट-सभा के मेम्बरों के निर्वाचकगण ही हमारे राजा बन बैठे। जिन गोरे अफ़सरों के हाथ में इस देश की राज-सत्ता है उनकी यही इच्छा देख पड़ती है कि वह राजसत्ता सदैव अपनेही हाथ में बनी रहे—वह कदापि अपने हाथ से जाने न पावे या वह किसी तरह कम न होने पावे। और इसी स्वार्थ से भरी हुई दुष्ट इच्छा की पूर्त्ति के लिये उन लोगों के सारे प्रयत्न होते हैं। अब इस बात को भी देखिये कि इंग्लैण्ड की पार्लिमेन्ट-सभा के मेम्बरों के निर्वाचक-गणों की इच्छा क्या है। यद्यपि वे स्वाधीन-चित्तवाले और न्याय-प्रिय हैं, तथापि अपने देश के व्यापार की वृद्धि के हेतु उनकी भी यही इच्छा देख पड़ती है कि हिन्दुस्थान का सब व्यापार अपने ही हाथ में बना रहे। यह

व्यापार न तो किसी दूसरे देश के लोगों के हाथ में जाने पावे और न हिन्दुस्थानियों ही के हाथ में रहे। वे लोग हिन्दुस्थान के व्यापार ही से धनी और मानी हुए हैं। इस लिये वे इस सोने की चिड़िया को अपने हाथ से जाने देना नहीं चाहते। सारांश, इस देश पर जिन विदेशियों की राजसत्ता है उनमें से कुछ तो गोरे अफ़सर हैं और कुछ गोरे व्यापारी। यहां के गोरे अफ़सर यही चाहते हैं कि इस देश की सब राजसत्ता अपने ही हाथ में बनी रहे; और विलायत के गोरे व्यापारी यही चाहते हैं कि इस देश का सब व्यापार अपने ही हाथ में बना रहे। यदि हिन्दुस्थानियों में कुछ एकता और शक्ति रहती तो वे उक्त दोनों प्रकार के लोगों की सत्ता को बहुत कुछ मर्यादित कर सकते; परंतु खेद की बात है कि इस देश के गोरे अफ़सर अपनी राजसत्ता का उपभोग, प्रजा की रोक-टोक के बिना, अनियंत्रित रूप से, कर रहे हैं; और विलायत के गोरे व्यापारी, इस पवित्र आर्यभूमि के कलेजे का सम्पत्ति-रूपी खून, निर्दयता से पीते चले जा रहे हैं।

उक्त विवेचन से पाठकों को यह बात विदित हो जायगी कि इस देश की राजसत्ता किन लोगों के हाथ में है—इस देश के राजा कौन हैं। इस देश पर गोरे अफ़सरों की जो अनियंत्रित राजसत्ता चल रही है उसको मर्यादित करने का यत्न करने के लिये कांग्रेस का जन्म हुआ है। अर्थात् कांग्रेस का प्रधान हेतु राजनैतिक विषयों की च[illegible] करने और राजनैतिक हक़ प्राप्त करने का है। स्मरण रहे कि राजनैतिक आन्दोलन करने में कांग्रेस ने इस देश की औद्योगिक और आर्थिक दशा पर दुर्लक्ष नहीं किया। उसने इस देश की आर्थिक उन्नति के संबंध में भी अनेक उत्तमोत्तम प्रस्ताव किये हैं। चार पांच वर्ष से कांग्रेस के साथ साथ देशी कारीगरी और कला-कुशलता की एक प्रदर्शनी भी, हर साल, खोली जाती है। गत वर्ष की कांग्रेस के समय, काशी में, एक औद्योगिक परिषद भी स्थापित हुआ है। सारांश, कांग्रेस ने औद्योगिक विषयों की ओर भी थोड़ा बहुत ध्यान दिया है। तथापि उसका प्रधान हेतु राजनैतिक ही कहा जायगा। उसका यही हेतु अत्यंत उचित है;

क्योंकि जबतक इस देश के अनियंत्रित गोरे अधिकारियों की अमर्यादित राजसत्ता कुछ सङ्कुचित न होगी और जबतक इस देश के निवासियों को, अपने देश के शासन-प्रबंध में, कुछ हक़ प्राप्त न होंगे—जबतक इस देश की राजसत्ता, इस देश की प्रजा ही के हाथ में, न आ जायगी, अर्थात् जबतक इस देश में स्वराज्य स्थापित न हो जायँगा—तबतक अन्य विषयों में उन्नति या सुधार करने का यत्न सफल न होगा। इस लिये कांग्रेस ने राजनैतिक विषयों ही को प्रधान महत्व दिया है।

अब, इस समय, हमारे नायकों का ध्यान औद्योगिक विषयों की ओर विशेष रीति से लग रहा है। इस देश का प्राचीन व्यापार कैसे नष्ट हो गया, इस बात का वर्णन आगे किया जायगा। उससे यह बात मालूम होगी कि कम्पनी-सरकार के समय अंगरेज़-राज्यकर्ता प्रत्यक्ष रीति से व्यापारी थे। जब से इस देश का शासन-भार पार्लिमेन्ट ने अपने ऊपर ले लिया तब से इस देश की राजसत्ता प्रत्यक्ष व्यापारियों के हाथ में नहीं है; परंतु इसमें सन्देह नहीं कि वह अप्रत्यक्ष रीति से व्यापारियोंही के हाथ में है। इन्हीं सत्ताधारी व्यापारियों के हित-साधन की चेष्टा हमारे गोरे अफ़सर किया करते हैं। इस सिद्धान्त की सत्यता के लिये हम लार्ड कर्ज़न महोदय के वाक्यों को प्रमाण मानते हैं। एक समय आपने आसाम के चाय के अंगरेज़-व्यापारियों से यह कहा था कि "इस देश में जितने अंगरेज़ हैं—चाहे वे खेती और खानों के काम पर हों, चाहे व्यापार और नौकरी करते हों—उनका उद्देश एक ही है। अर्थात् सरकारी कर्मचारियों को चाहिए कि वे इस देश का शासन उत्तम रीति से करें;* और आप लोगों को चाहिए कि अपनी पूंजी भिन्न भिन्न व्यवसायों में लगाकर इस देश की सब सम्पत्ति चूस लें।" हिन्दुस्थान में खानों का व्यवसाय करनेवाले जो अंगरेज़-व्यापारी हैं उनसे भी लार्ड कर्ज़न महोदय ने यही कहा था कि "मेरा काम शासन करने का है और आप लोगों का काम इस देश की सम्पत्ति को चूस लेने का। दोनों कार्य

---

* इसका यही अर्थ है न, कि सरकारी कर्मचारी अपनी अमर्यादित और अनियंत्रित राजसत्ता का उपभोग चिरकाल लेते रहें?

एकही प्रश्न और एकही कर्तव्य के भिन्न भिन्न रूप हैं*।" उक्त वाक्यों में एक भी ऐसा शब्द नहीं है जिससे यह बात प्रकट हो, कि इस देश के निवासियों की प्रार्थना पर ध्यान देना, उनको स्वराज्य के कुछ हक़ देना और उनको संतुष्ट रखना भी अंगरेज़ों का कर्तव्य है। इस देश में अंगरेजों के सिर्फ दो ही कर्तव्य हैं—शासन करना (अर्थात्, हिन्दुस्थानियों को सदा दासत्व में रखना) और सम्पत्ति को चूसना! सारांश, वर्तमान शासन-प्रणाली इस प्रकार की है कि, बाहर से देखनेवाले को अंगरेजी व्यापार और अंगरेजी राजसत्ता भिन्न भिन्न देख पड़ती है; परन्तु यथार्थ में वे दोनों एकत्र और सम्मिलित हैं। अतएव अंगरेज़-व्यापारियों की उक्त सत्ता का प्रतिबंध करके, अपने देश की औद्योगिक तथा आर्थिक उन्नति करने के लिये, हमारे नायकों ने 'स्वदेशी' आन्दोलन और 'बायकाट' का उपाय ढूंढ़ निकाला। जिस प्रकार कांग्रेस-द्वारा राजनैतिक आन्दोलन करने से यह आशा की जाती है, कि अंगरेज़-अधिकारियों की अनियंत्रित राजसत्ता कुछ घट जायगी; उसी प्रकार 'स्वदेशी' आन्दोलन और 'बायकाट' के द्वारा उद्योग करने से यह आशा की जाती है, कि अंगरेज़-व्यापारियों की सत्ता और इस देश की सम्पत्ति को चूसने का उनका यत्न कुछ शिथिल हो जयगा। इससे यह बात सिद्ध होती है, कि चाहे कांग्रेस-द्वारा राजनैतिक आन्दोलन किया जाय, चाहे 'स्वदेशी' द्वारा औद्योगिक आन्दोलन किया जाय, दोनों बातों का अंतिम परिणाम एकही होगा; क्योंकि ये दोनों बातें अंगरेज़ों के स्वार्थहित के विरुद्ध हैं—इन दोनों से अंगरेज़ों की अपरिमित स्वार्थ-बुद्धि का कुछ प्रतिबंध अवश्य होगा। सारांश, कांग्रेस और 'स्वदेशी' आन्दोलन के अन्तिम परिणाम में कुछ भी भेद नहीं है। जो लोग इस बात को नहीं मानते वे 'स्वदेशी' के यथार्थ भाव ही को समझने में असमर्थ हैं!

*Cf:—"My work lies in administration: yours in exploitation. Both are aspects of the same question and of the same duty."

Lord Curzon's speech
at Burrakur, January 1903.

अंगरेज़ लोग इस बात को भलीभांति जानते हैं कि 'स्वदेशी' का परिणाम क्या होगा। यदि इस विषय के संबंध में किसीके मन में भ्रम या संशय है, तो वह हमारे ही देशभाइयों के मन में है। हमारे ही कुछ देशभाई, 'स्वदेशी' के यथार्थ भाव को न समझकर, हमको यह उपदेश देते हैं कि 'स्वदेशी' को राजनैतिक विषयों से बिलकुल अलग रखना चाहिए; 'स्वदेशी' का संबंध कांग्रेस से न रहने देना चाहिए; 'स्वदेशी' का उद्देश केवल अपने देश के व्यापार और कारखानों की उन्नति करने का है; 'स्वदेशी' का 'बायकाट' से कुछ भी संबंध न रहने देना चाहिए। अब हमारा यह प्रश्न है कि, क्या हम लोगों पर राज्य करनेवाले अंगरेज़ दुध-मुहे बालक हैं, जो 'बायकाट', 'बहिष्कार-योग', 'विदेशी वस्तु का त्याग' 'राजनैतिक' आदि शब्दों के बदले 'स्वदेशी', 'स्वदेशी वस्तु का व्यवहार' 'अपने व्यापार और कारखानों की उन्नति' आदि शब्दों के प्रयोग ही से धोखा खा जायँगे ? क्या वे केवल शब्दों के उलट-पलट ही से यह समझ लेंगे कि हमारा प्रयत्न अपने देश के हित के लिये नहीं, किंतु उन्हीं लोगों ( अंगरेज़ों ) के हित के लिये है ? क्या वे किसी एक प्रकार के शब्दों के उपयोग ही से प्रसन्न हो जायँगे ? नहीं; कदापि नहीं। जो लोग इस उपाय से अंगरेज़ों की आंखों में धूल फेंकना चाहते हैं वे अपनी अज्ञानता और अपनी मूर्खता से स्वयं अपनी आंखों में धूल फेंककर अंधे बनने का यत्न करते हैं। ऊपर लिखा गया है कि जो जो प्रयत्न ( चाहे वे राजनैतिक हों, चाहे औद्योगिक ) हमारे देश की यथार्थ उन्नति के लिये किये जायँगे वे सब, न्यूनाधिक प्रमाण से, अंगरेज़ों के स्वार्थ-हित के विरुद्ध ही होंगे। आप उन प्रयत्नों का नाम कुछ भी रखिये -- आपका दिल चाहे तो उसे कांग्रेस कहिये, या स्वदेशी आन्दोलन कहिये, या बायकाट कहिये। इन सब प्रयत्नों का जो अन्तिम फल होगा—और जिस अन्तिम फल की अभिलाषा प्रत्येक देशभक्त के मन में अवश्य होनी चाहिए—वह एक ही है। वह फल यही है, कि इस देश के गोरे अधिकारियों की राजसत्ता कुछ मर्यादित होकर इस देश के निवासियों को स्वराज्य का सुख प्राप्त होगा, और विलायत के गोरे व्यापारियों की धनलालसा कुछ कम होकर हमारे देश

का व्यापार हमारे बत्तीस करोड़ देशभाइयों के हाथ में आ जायगा। अतएव, अन्तिम परिणाम की ओर देखकर हमें यही कहना पड़ता है कि कांग्रेस और 'स्वदेशी' में कुछ भेद नहीं है; और यह देश-कार्य प्रत्येक देशहितचिंतक का पवित्र कर्तव्य समझा जाना चाहिए।

## क्या ये हमारे गुरू हैं ?

प्रस्तुत स्वदेशी आन्दोलन में इस देश के विद्यार्थीगण भी शामिल हैं। बंगाल-प्रांत में तो इस आन्दोलन का मुख्य भार विद्यार्थियों ही के ऊपर था और उन्हींकी सहायता से उस आन्दोलन का ज़ोर वहां बहुत बढ़ा। इस बात को शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने पसंद नहीं किया। किसी स्थान में "स्वदेशी" से संबंध रखनेवाले लड़के स्कूल से अलग कर दिये गये; कहीं कहीं छात्रों को दंड किया गया; कहीं कहीं वे अपनी परीक्षाओं से रोक दिये गये और कहीं कहीं उनको अदालत से सजा भी दिलाई गई। कुछ स्कूल और कालेजों में शिक्षा देनेवाले गुरू, अध्यापक और प्रिन्सिपल लोगों ने अपनी यह राय जाहिर की, कि छात्रों को स्वदेशी आन्दोलन से संबंध न रखना चाहिए। इतनाही नहीं, किंतु कुछ लोगों ने तो यह सम्मति दी कि विद्यार्थियों को किसी राजनैतिक आन्दोलन में शामिल न होने देना चाहिए—उन्हें राजनैतिक विषयों की चर्चा ही न करने देना चाहिए। जिन लोगों ने यह राय ज़ाहिर की है उनमें से कुछ तो गोरे गुरू हैं और कुछ हमारे काले भाई भी हैं। इस लेख में हम अपने काले भाइयों के संबंध में कुछ लिखना नहीं चाहते; क्योंकि उनकी राय हमारे गोरे गुरू महाराज की शिक्षा ही से बनी हुई है। अतएव इन गोरे गुरू महाराज ही के संबंध में कुछ लिखना उचित है। अर्थात् इस विषय का विवेचन करना उचित है कि, क्या ये गोरे लोग यथार्थ में हमारे गुरू हैं ?

प्रथम इस बात का विचार करना चाहिए कि गुरू कहते किसे हैं। ? यदि भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास देखा जाय तो यह बात विदित होगी कि, उस समय जिन लोगों के द्वारा, समाज को, धर्म, नीति, ज्ञान, विनय, शूरता आदि गुणों की शिक्षा प्राप्त होती थी; और जिन लोगों के द्वारा देश का यथार्थ हित होता था; वे अत्यंत शांत, ज्ञानसम्पन्न, जितेन्द्रिय, निस्पृह, सत्यशील और निर्लोभी थे। संसार के रगड़ों-झगड़ों से अलग होकर वे किसी वन में निवास करते थे। वही, उस समय के, सच्चे गुरू थे। इस प्रकार के गुरू के आश्रम में कुछ वर्ष रहकर जो शिष्य, छात्र या विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे उन लोगों के मन में, अपने गुरूजी वा आचार्य के संबंध में, स्वाभाविक आदर और पूज्यबुद्धि उत्पन्न होती थी। इस प्रकार के गुरू और आचार्यों के आश्रम, वर्तमान समय के स्कूल, कालेज और यूनिवर्सिटी से बहुत अच्छे थे; क्योंकि उन आश्रमों में शांति, स्वाधीनता, समबुद्धि और निर्लोभता से इस विषय की चर्चा की जाती थी कि धर्म क्या है, अधर्म क्या है; स्वधर्म-पालन से समाज और देश का हित कैसे होता है; नीति किसे कहते हैं, अनीति किसे कहते हैं; राजा का धर्म क्या है, प्रजा का धर्म क्या है; यदि राजा अपनी सत्ता का दुरूपयोग करने लगे तो प्रजा को क्या करना चाहिए; यदि प्रजा दुराचारी और कर्तव्य-पराङ्मुख होने लगे तो राजा को क्या करना चाहिए; इत्यादि। इस प्रकार के आश्रमों में शिक्षा प्राप्त करके जो छात्र समाज में आते थे वे अत्यंत तेजस्वी, स्वाधीन-चित्तवाले और अपने कर्तव्य को पहचाननेवाले रहते थे। बड़े बड़े राजा और महाराजा भी, कभी कभी, बिकट समय में, अपने गुरू या आचार्य के आश्रम में जाते और उनकी सलाह लेते थे। इसीलिये हमारे धर्मशास्त्र में गुरू को पिता से भी अधिक सन्मान देने की आज्ञा दी गई है। जो गुरू ज्ञानसम्पन्न, निस्पृह, परोपकारी और निर्मल अंतःकरण के हैं उन्हींको यह सन्मान दिया जा सकता है। इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र वस्तु और कोई नहीं। गीता में लिखा है कि "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।" परंतु जब कोई मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये — केवल अपना पेट भरने के लिये — उक्त ज्ञानामृत का

विक्रय करता है तब उस ज्ञान की पवित्रता और शुद्धता बिगड़ जाती है। हिमालय पर्वत के शिखर से उत्पन्न होनेवाले गंगाजल की तुलना काशी की मोरियों में बहनेवाले पानी से की नहीं जा सकती।

देखिये, इस समय, यह देश विदेशियों ही के अधीन है; और इस देश के निवासियों को शिक्षा देने का काम उन्हीं विदेशियों के हाथ में है। विदेशी राजाओं की स्वभावतः यही इच्छा होती है कि जो देश किसी प्रकार अपने हाथ लग गया है वह चिरकाल अपने अधीन बना रहे और उस देश के निवासी सदा अपने दास—गुलाम—बने रहें। इस इच्छा की सफलता के लिये जिस नीति से इस देश का राजकाज किया जाता है उसीके अनुकूल सरकारी शिक्षा-विभाग के द्वारा लोगों को शिक्षा दी जाती है। अर्थात् इस देश के सरकारी स्कूल, कालेज और यूनिवर्सिटी में, सरस्वती-देवी को, विदेशी राजसत्ता की दासी का काम करना पड़ता है। यूरप के स्वतंत्र देशों के कालेजों और विश्वविद्यालयों में जिस तरह राजनैतिक विषयों की चर्चा होती है और राष्ट्रहित की बातों का निर्णय किया जाता है, उस तरह इस देश के कालेजों और विश्वविद्यालयों में होना असंभव है। हमारे स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय सर्वथा विदेशी सरकार के अधीन हैं; और प्रजा को जिस दशा में रखने का सरकार का निश्चय होगा उसीके अनुसार उक्त स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालयों में शिक्षा दी जाने का प्रबंध किया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि इस देश के स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय अपने विद्यार्थियों को स्वदेशहित और स्वदेश-भक्ति के यथार्थ तत्वों की शिक्षा देने के काम में सर्वथा अपात्र होगये हैं। इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी अमेरिका, जापान आदि स्वाधीन देशों में जो कालेज और विश्वविद्यालय हैं, उनकी ओर देखने से यही बोध होता है कि इस देश के कालेज और विश्वविद्यालय, इस देश की यथार्थ उन्नति के, पूर्ण विरोधी हैं। जब उक्त स्वतंत्र देशों में किसी सार्वजनिक विषय पर चर्चा होती है—जब कोई जातीय या राष्ट्रीय आन्दोलन होता है—तब वहां के विश्वविद्यालयों और कालेजों के गुरू और अध्यापक भी प्रचलित विषयों पर अपनी सम्मति प्रकट करते हैं; और जो पक्ष उन्हें न्याय्य, उचित और

देशहित-साधक देख पड़ता है उसके अनुयायी बनने तथा उसके अनुसार बर्ताव करने के लिये, वे अपने छात्रगणों को भी उत्तेजित करते हैं। जिन लोगों ने रशिया के वर्तमान आन्दोलन का इतिहास ध्यान देकर पढ़ा होगा, उन्हें यह बात विदित होगी कि उस आन्दोलन में कितने गुरू, कितने अध्यापक और कितने विद्यार्थी शामिल थे। जापान का इतिहास भी इसी बात की गवाही देता है, कि उस देश के राजनैतिक तथा प्रत्येक देश-हितैषी आन्दोलन में कालेजों के गुरू और अध्यापकों तथा विद्यार्थियों का प्रधान भाग रहता है। सच्चे गुरू और अध्यापकों का यही कर्तव्य है, कि वे अपने तरुण विद्यार्थियों को राष्ट्रहित के यथार्थ तत्त्व भली-भांति समझा दें; और युवावस्था से ही उनके मन में देशहित तथा देशभक्ति का बीजारोपण करके उनका शील—स्वभाव—इस प्रकार का बनावें कि वे यावज्जीवन अपने कर्तव्य से कभी पराङ्मुख न हों। जो गुरू या अध्यापक विदेशी राजा के नौकर हैं—जो गुरू या अध्यापक विदेशी राजा की नीति और शिमला-परिषद के नियमों के अनुसार अपने छात्रों को 'प्रज्ञाहत' करके निरंतर दासत्व में रखने का प्रयत्न करते हैं—जो गुरू या अध्यापक अपने उदरपोषण के लोभ से विदेशी राजा के शिक्षा-विभाग के अधीन हैं—जो गुरू या अध्यापक अपने छात्रों को केवल सरकारी नौकर बनने के योग्य शिक्षा देते हैं—जो गुरू या अध्यापक अपने छात्रों को स्वदेशा-भिमानी और स्वदेशभक्त होने से रोकते हैं—वे सच्चे गुरू नहीं हैं।

उक्त विवेचन से यह बात ध्यान में आ जायगी कि स्वाधीन देशों के कालेज और यूनिवर्सिटी के गुरू और अध्यापकों तथा छात्रों में, और हमारे देश के कालेज और यूनिवर्सिटी के गुरू और अध्यापकों तथा छात्रों में, क्या भेद है। सच बात यह है, कि राष्ट्रीय या जातीय शिक्षा के काम में हमारे ये गुरू अत्यंत निरुपयोगी हैं; इतनाही नहीं, वे हमारी जातीय शिक्षा के विरोधी हैं। हां, इसमें संदेह नहीं कि वे अंगरेजी साहित्य और विज्ञान के बड़े पंडित हैं। शेक्सपीयर के नाटक, टेनीसन और वर्ड्सवर्थ की कविता, बेकन और हक्सले के निबंध आदि पढ़ाने के लिये ये गुरू योग्य हैं; परंतु वे इस देश की स्वाधीनता और यथार्थ उन्नति के तत्वों की शिक्षा देने के

काम में सच्चे गुरू नहीं हैं। इस प्रकार की शिक्षा, हमारे छात्रों को, बाबू सुरेन्द्र-नाथ बनर्जी* के समान, देश-भक्तों ही के द्वारा, प्राप्त होगी। इन देशभक्तों के सिवा अन्य किसी का यह अधिकार नहीं है कि वह हमारे छात्रों को देशभक्ति, देशहित, देशी आन्दोलन और देशोन्नति के यथार्थ सिद्धान्तों की शिक्षा दे। इन्हीं देशभक्तों का इस बात का हक़ है कि वे हमारे छात्रों को इस प्रकार की शिक्षा दें जिससे हमारा देश दुनिया के सभ्य देशों की बराबरी करने का दावा कर सके और जिससे वे स्वयं अपने देश को दुनिया के सभ्य देशों के समकक्ष करने का प्रयत्न कर सकें। यह शिक्षा उन गुरू और अध्यापकों के द्वारा कदापि प्राप्त हो नहीं सकती जो विदेशी राजा के नौकर हैं और जो अपने ज्ञान की बिक्री, केवल अपना पेट भरने ही के लिये, करते हैं। इसीलिये हम कहते हैं, कि ये हमारे यथार्थ गुरू नहीं हैं। यदि ये हमारे सच्चे गुरू होते, तो जिस प्रकार इंग्लैंड में मिस्टर चेम्बरलेन के आन्दोलन में आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी शामिल हुए, उसी प्रकार वे हमारे स्वदेशी आन्दोलन में हमारे विद्यार्थियों को भी शामिल होने देते; अथवा, जिस प्रकार अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, रशिया और जापान के विश्वविद्यालयों के गुरू अपने अपने देश के हित के विषयों पर व्याख्यान देते हैं उसी प्रकार वे भी इस देश में, गांव गांव में, स्वदेशी आन्दोलन पर व्याख्यान देते।

यदि विदेशी राजसत्ता के कारण सरकारी स्कूल और कालेजों की उपर्युक्त पराधीन दशा हो गई है, तो वह एक तरह से स्वाभाविक ही मानी जायगी; परंतु यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि जो प्राइवेट स्कूल और कालेज, उक्त प्रकार की शिक्षा देने ही के लिये, स्वार्थ-त्याग और स्वावलम्बन के तत्वों पर खोले गये थे, वे भी सरकार की गुलामी क़बूल करके स्वदेशी आन्दोलन से क्यों पराङ्मुख हो रहे हैं ? इन प्राइवेट स्कूलों और कालेजों के जो अध्यापक और प्रिंसिपाल अपने छात्रों को स्वदेशी

*और दादाभाई नौरोजी, पंडित बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय आदि।

आन्दोलन में शामिल होने की मनाई करते हैं उनको क्या कहना चाहिए? क्या वे हमारे गुरू हैं? क्या उनको प्राचीन समय के गुरू के तुल्य सन्मान दिया जा सकता है? कदापि नहीं। जो गुरू अपने शिष्यों या छात्रों को देशहित की शिक्षा नहीं देता और जो गुरू अपने छात्रों को देशहित के कार्यों से पराङ्मुख करता है, वह गुरू-पद का अधिकारी हो नहीं सकता——चाहे वह देशी हो वा विदेशी। जो गुरू, अध्यापक या प्रिंसिपाल अपने प्राइवेट स्कूल, या कालेज के छात्रों को स्वदेशी आन्दोलन में शामिल होने नहीं देते वे, हमारे गुरू नहीं, शत्रु हैं। यदि इन प्राइवेट स्कूलों और कालेजों में, सरकारी स्कूल और कालेजों से, कुछ भी अधिक स्वाधीनता, स्वदेशभक्ति या स्वदेशाभिमान देख नहीं पड़ता, तो वे 'प्राइवेट' किस तरह कहे जा सकते हैं? वे भी, पूरे 'सरकारी' नहीं, तो 'नीम सरकारी' अवश्य हैं। इस प्रकार के 'प्राइवेट'—नीम सरकारी—कालेजों की, जो सर्व-साधारण लोगों के चन्दे से खोले जाते हैं, क्या आवश्यकता है? क्या सरकारी स्कूल और कालेजों की कुछ कमी है? जो 'प्राइवेट' स्कूल और कालेज केवल सरकारी स्कूल और कालेजों की नक़ल करने ही में पुरुषार्थ मानते हैं——अपने उद्देश की सफलता समझते हैं——उनको सर्वसाधारण लोगों के द्रव्य की सहायता क्यों दी जाय? जिस स्वदेशी आन्दोलन की आग सारे हिंदुस्थान में भभक रही है, जिस स्वदेशी आन्दोलन का प्रसार कलकत्ते के एक प्राइवेट कालेज के प्रिंसिपाल स्वयं कर रहे हैं और जिस आन्दोलन में अपने छात्रों को शामिल करना वे अनुचित नहीं समझते, उस आन्दोलन से जिन प्राइवेट स्कूलों और कालेजों के प्रोफेसर और प्रिंसिपाल अपने छात्रों को पराङ्मुख रखने का प्रयत्न करते हैं वे सर्वसाधारण लोगों के द्रव्य से क्यों चलाए जाँय?

कोई कोई कहते हैं कि इससे स्कूल और कालेज की मर्यादा, नियम या 'डिसिप्लिन' का भंग होता है। हम यह जानना चाहते हैं कि 'डिसिप्लिन' का अर्थ क्या है? यदि कोई विद्यार्थी नित्य स्नान, संध्या और पूजा करे; अथवा अपने जातिभाइयों के घर भोजन करने जाय; अथवा अपने माता पिता की आज्ञा का पालन करे; अथवा इसी प्रकार के और कोई

धार्मिक, सामाजिक, व्यावहारिक, नैतिक आदि काम करें, तो क्या यह 'डिसिप्लिन' का भङ्ग कहा जायगा ? नहीं। अब प्रश्न यह है कि, यदि विद्यार्थी अपने देश की उन्नति के किसी कार्य में शामिल हों तो आप उसे 'डिसिप्लिन' के विरुद्ध कैसे कह सकते हैं ? सारांश, जो गुरू स्वयं कुछ देशहित करना नहीं चाहते वही डिसिप्लिन आदि का बहाना करके अपने छात्रों को भी देशहित के कामों से रोका करते हैं। अतएव हमारी यह राय है कि ये लोग हमारे गुरू नहीं हैं।

अब हम इस बात का विचार करते हैं कि, इस देश में, सरकारी स्कूल और कालेजों के रहने पर भी प्राइवेट स्कूल और कालेज क्यों खोले गये। लार्ड रिपन के शासन-समय में शिक्षा-विषयक एक कमीशन जारी हुआ था। उस कमीशन ने यह सम्मति दी थी कि लोगों को प्राइवेट शालाएं खोलने का उत्तेजन दिया जाय। उस समय, भारत-सरकार की यह राय थी, कि इस देश में शिक्षा का जितना प्रसार करने का सरकार का इरादा है उतना प्रसार, प्राइवेट शालाओं की सहायता बिना, हो नहीं सकेगा। अतएव लोगों को शिक्षा का भार स्वयं अपने ऊपर लेना चाहिए। परंतु इस बात की ओर विशेष ध्यान रहे, कि प्राइवेट शालाएं हूबहू सरकारी शालाओं के तर्ज़ पर न हों—वे केवल सरकारी शालाओं की नक़ल न करें—वे सरकारी शालाओं के प्रतिबिम्ब-स्वरूप न बनें; किंतु सरकारी शालाओं की शिक्षा-प्रणाली में जो कुछ अभाव हो उसकी वे पूर्ति करें—सरकारी शालाओं की शिक्षा-पद्धति के दोषों को वे दूर करें, जो बातें सरकारी शालाओं में सिखाई नहीं जातीं उनकी शिक्षा का वे उचित प्रबंध करें। अर्थात् सरकारी शालाओं में जिस स्वाधीनता की शिक्षा दी नहीं जाती उस शिक्षा का विशेष यत्न प्राइवेट शालाओं में किया जाना चाहिए। इसी उच्च हेतु की सफलता के लिये पूना, कलकत्ता, मद्रास, लाहोर, बनारस आदि स्थानों में प्राइवेट कालेज खोले गये। इसी उच्च हेतु की सफलता के लिये, अर्थात् अपने देशभाइयों को स्वतंत्र और उदार शिक्षा देने के लिये, इस देश के अनेक सुशिक्षित युवकों ने स्वार्थत्याग किया और उक्त संस्थाओं की सेवा करने के लिये आत्मार्पण किया। इसी

उस हेतु की सफलता के लिये, इस देश के सर्व साधारण लोगों से लेकर बड़े बड़े श्रीमानों तक, सब लोगों ने, अपनी अपनी शक्ति के अनुसार, द्रव्यद्वारा सहायता दी। स्मरण रहे, कि जिस प्रकार की शिक्षा सरकारी कालेजों में दी जाती है उसी प्रकार की निकम्मी और निरुपयोगी शिक्षा देने के लिये उक्त कालेज स्थापित नहीं किये गये थे। लार्ड रिपन के बाद भारत-सरकार की नीयत धीरे धीरे बदलने लगी। जिन महानुभावों ने हिन्दुस्थानियों को यूरप की उदार शिक्षा देने का प्रयत्न किया था उनका यह कथन था कि "जिस दिन उदार शिक्षा के द्वारा लोगों के मन सुसंस्कृत होंगे और जिस दिन वे अपने यथार्थ हक़ों को भलीभांति जानने लगेंगे, वह दिन इंग्लैंड के इतिहास में **सुदिन** समझा जायगा"। यह बात लार्ड कर्जन को नापसंद थी। उन्होंने अपनी राजसत्ता के बल से एक क़ायदा बना डाला जिससे, इस देश की शिक्षा की सब संस्थाएं सरकार के अधीन हो गईं। जो प्राइवेट स्कूल और कालेज स्वतंत्र और उदार शिक्षा देने के हेतु खोले गये थे वे भी सरकार की नीति के अनुगामी होगये। ये स्कूल और कालेज, पहले ही, ग्रान्टस्-इन-एड (सरकारी सहायता) के नियमों से बँध गये थे। उनकी बची बचाई स्वाधीनता, लार्ड कर्जन की कृपा से, सब नष्ट होगई। अब यथार्थ में ये प्राइवेट स्कूल और कालेज सरकारी या नीम-सरकारी हैं। क्या इस प्रकार के प्राइवेट कालेजों की शिक्षा से हमारे छात्रों को कभी स्वप्न में भी स्वदेशहित, स्वदेशाभिमान और स्वदेश-भक्ति दिख पड़ेगी ?

जिस देश में, न्याय करनेवाले न्यायाधीश और शिक्षा देनेवाले गुरू राजसत्ताधिकारियों के अधीन रहते हैं, उस देश में न तो यथार्थ न्याय हो सकता है और न सत्य-विद्या प्राप्त हो सकती है। न्याय-देवता की स्वाधीनता और गंभीरता, तथा सरस्वती-देवी की रमणीयता और महिमा तभीतक पवित्र रह सकती है जबतक वह राजसत्ताधि-कारियों के दास या दासी न हों। यह बात तो मनुष्य स्वभावही के विरुद्ध है कि बिजयी लोग, पराजित लोगों को, राष्ट्रधर्म के स्वतंत्र तत्वों की शिक्षा दें। इन सब बातों को खूब सोच समझकर हमने यही निश्चय

किया है कि न तो सरकारी कालेजों के और न उपर्युक्त प्राइवेट कालेजों के अध्यापक हमारे यथार्थ गुरू हैं।

जापान के इतिहास से यह बात विदित होती है, कि जापानी-विद्यार्थियों ने यूरप की विद्या, विदेशियों के द्वारा, प्राप्त की; परंतु स्वदेशाभिमान, स्वदेशभक्ति, स्वदेशप्रीति और स्वदेशोन्नति के तत्वों की शिक्षा उन लोगों ने, फ़ुकुज़ावा, टोगो, ईटो आदि अनेक जापानी-वीरों (अर्थात् अपने देशभाइयों) ही से प्राप्त की। क्या इस उदाहरण से हम लोगों को कुछ शिक्षा लेनी न चाहिए ?

हिरण्यकश्यप और उसके पुत्र प्रह्लाद की पौराणिक कथा प्रसिद्ध है। हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद की शिक्षा के लिये, अपने मत के अनुसार, अनेक गुरू नियत किये थे। परंतु प्रह्लाद के मन में जिस श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति और प्रीति थी, उस विषय की शिक्षा उक्त गुरू में से किसी एक ने भी उसे न दी। उस समय उसने जो कुछ कहा है उसका वर्णन, वामन पंडित नाम के कवि ने, मराठी में, इस प्रकार किया है:—

> हे तों गुरू पापतरू ह्मणावे।
> अंधाहुनी अंध असे गणावे॥
> दे प्रीति कृष्णीं गुरु तोच साच।
> श्रुत्यर्थ इत्यर्थ असे असाच॥

इसका भावार्थ यह है:—ये गुरू 'पापतरू' (पाप-वृक्ष) हैं। इनको अंधों से भी अधिक अंधे समझना चाहिए। जो गुरू श्रीकृष्ण के संबंध में प्रीति की शिक्षा दे वही सच्चा गुरू है—यही श्रुति का अर्थ है। जिस प्रकार प्रह्लाद के उक्त गुरू, कृष्ण-भक्ति विषयक शिक्षा देने के काम में, निरुपयोगी थे; उसी प्रकार हमारे वर्तमान सयय के गुरू, अपने छात्रों को स्वदेशभक्ति की शिक्षा देने के काम में, निरुपयोगी हैं। और जिस प्रकार कृष्णभक्ति की इच्छा रखनेवाले प्रह्लाद ने अपने पिता के नियत किये हुए गुरू की कुछ परवा न की, उसी प्रकार हमारे देशाभिमानी छात्रों को भी अपने उन अध्यापकों की कुछ परवा न करनी चाहिए जो सरकारी गुलाम बन बैठे हैं। यदि ऐसा न किया जायगा तो परिणाम

यह होगा, कि हिन्दुस्थानियों को दासत्व ही में अपना सब जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। मनू ने स्त्रियों के संबंध में लिखा है--"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति"॥ अर्थात् छुटपन में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहकर स्त्रियों को अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए; उन्हें स्वाधीनता से रहना उचित नहीं। बोध होता है कि, ठीक इसी प्रकार का नियम, सरकारी शिक्षा-प्रणाली के अनुसार, हम लोगों के लिये भी बनाया गया है। इस राजनीति का, नीचे लिखा हुआ, श्लोक ध्यान में रखने योग्य है:—

बाल्ये राजगुरुर्यता यौवने भृतिदो नृपः।
ततः पेन्शनदाता च न हिंदुः प्रभुरात्मनः॥

अर्थात, हिंदुस्थानियों को, बाल्यावस्था में, विद्यार्थी होने के कारण, गुरू के अधीन रहना चाहिए; युवावस्था में, सरकारी नौकर होने के कारण, राजसत्ताधिकारियों के अधीन रहना चाहिए; और वृद्धावस्था में, पेन्शन पाने के कारण, सरकार की निगरानी में रहना चाहिए---कोई हिन्दुस्थानी अपनी आत्मा का प्रभु हो नहीं सकता—वह अपने मन का मालिक, खुद-मुख्तार या स्वतंत्र हो नहीं सकता। उसको अपना सारा जीवन दासत्व ही में व्यतीत करना चाहिए। खेद है, अत्यंत शोक है, कि यह बात हमारे देशभाइयों के ध्यान में नहीं आती! जो गुरू उक्त नीति के अनुसार हमारे छात्रों को शिक्षा देते हैं वे यथार्थ में हमारे गुरू नहीं हैं। उनकी सहायता की अपेक्षा न करते हुए हम लोगों को अपना कर्तव्य करना चाहिए।

क्या हम लोग अपने बालकों को सरकारी या प्राइवेट शालाओं में इस लिये भेजते हैं, कि उनके हृदय में स्वदेशभक्ति का बीज ही न बोया जाय? जो गुरू पराधीन होकर, स्वार्थ, लोभ, मोह या बुद्धिभ्रंश से हमारे बालकों को राष्ट्रहित और देशभक्ति की शिक्षा नहीं देता उसको हम गुरू नहीं समझते। यदि कोई छात्र ऐसे गुरू की आज्ञा पालन न करे तो वह आज्ञाभंग का दोषी हो नहीं सकता।

# आक्षेप-निवारण ।

स्वदेशी आन्दोलन ने अबतक कई रंग बदले । इस लिये उसके साथ और भी कई विषय शामिल हो गये । उनमें से प्रधान प्रधान विषयों का संक्षिप्त विवेचन गत परिच्छेदों में किया गया है । इस आन्दोलन की उपयुक्तता और महत्त्व भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न रीति से स्थापित कर रहे हैं । अब ऐसे बिरले ही होंगे जो 'स्वदेशी' या 'बायकाट' का विरोध करें । सब लोगों का यही निश्चय देख पड़ता है कि स्वदेशी वस्तु का स्वीकार और विदेशी वस्तु का त्याग करना चाहिए । राजकोट के एक बारिस्टर, मिस्टर पंडित, की यह राय है कि 'स्वदेशी' से दुर्भिक्ष का निवारण हो सकेगा; क्योंकि जब इस आन्दोलन से देशी व्यापार की तरक्की होगी तब खेती पर निर्वाह करनेवाले गरीब किसानों की संख्या कम हो जायगी और गांव गांव में उद्योग की वृद्धि होने लगेगी । इस आन्दोलन से नैतिक लाभ भी होगा; क्योंकि यह एक स्वावलम्बन का मार्ग है । सारांश, राजनैतिक, औद्योगिक, सामाजिक, नैतिक आदि अनेक प्रकार से यह आन्दोलन लाभदायक है । इतना होने पर भी कुछ सखी के लाल इस उपयोगी आन्दोलन के विरुद्ध अपनी टें टें रटा ही करते हैं । इन लोगों के आक्षेपों का उत्तर, इस लेख में, कई स्थानों में, दिया गया है । अब उनके एक प्रधान आक्षेप का खण्डन किया जाता है ।

बहुतेरे लोगों का यह कथन है कि, इस आन्दोलन के कारण देशी वस्तु बहुत महँगी हो गई है; और महँगी वस्तु खरीदने से हम लोगों की हानि होती है । इस आक्षेप का एक भाग सच है—वह यह है कि स्वदेशी आन्दोलन के कारण, इस समय, देशी-वस्तु का भाव कुछ बढ़ गया है ; परन्तु उस आक्षेप का दूसरा भाग—अर्थात् स्वदेशी महँगी वस्तु खरीदने से हम लोगों की हानि होती है--निरा भ्रामक और असत्य है । आप यूरप के किसी देश का साम्पत्तिक इतिहास देखिये, आपको यही विदित होगा कि प्रत्येक देश में, अपनी अपनी साम्पत्तिक उन्नति करने और अपने अपने

व्यापार को उत्तेजित करने के हेतु, विदेशी-वस्तुओं पर कर लगाया जाता है। यह काम प्रत्येक देश की सरकार ( गवर्नमेन्ट ) का है। परंतु यह देश अंगरेज़-सरकार के अधीन है; इस लिये वह हम लोगों के व्यापार की रक्षा और उन्नति के लिये विदेशी-वस्तुओं पर कर लगाना नहीं चाहती। ऐसी अवस्था में, जो कार्य सरकारी कर लगाने से सिद्ध होता वही, सर्व साधारण लोगों के स्वदेशी वस्तु-व्यवहार की प्रतिज्ञा से, सिद्ध हो रहा है। जब लोग अपने देश के व्यापार की रक्षा और उन्नति के लिये स्वदेशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा कर लेते हैं, तब यही समझना चाहिए कि वे लोग, विदेशी वस्तुओं पर सरकारी कर लगाने से जो फल होता उसका स्वीकार करने के लिये, ख़ुशी से तैयार हैं। जब विदेशी वस्तुओं पर सरकार की ओर से कर लगाया जाता है, तब वे महँगी हो जाती हैं और उनके ख़रीदारों को एक प्रकार का टैक्स ( कर ) देना पड़ता है; और जब लोग अपनी ख़ुशी से स्वदेशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा करते हैं, तब भी देशी वस्तु महँगी हो जाती है और उसके ख़रीदारों को एक प्रकार का टैक्स ( कर ) देना ही पड़ता है। इससे देश की हानि किस तरह होती है यह बात हमारी समझ में नहीं आती। यह तो अर्थशास्त्र का सिद्धान्त ही है कि जब किसी देश के व्यापार की रक्षा और उन्नति करना हो, तब विदेशी वस्तु पर—अर्थात् उसके ख़रीदारों पर—उस देश के लोगों पर—कर लगाना पड़ता है। यदि हमारे स्वदेशी आन्दोलन से स्वदेशी-वस्तु महँगी हो गई है, तो उसका अर्थ यही समझना चाहिए कि हम लोगों को, अपने देश के व्यापार की रक्षा और उन्नति के लिये, अपनी ख़ुशी से, कर देना पड़ता है। इससे देश की कुछ हानि हो नहीं सकती। ऐसा मान लीजिये कि जो विदेशी वस्तु १) रु० को मिलती है, वही स्वदेशी वस्तु हम लोगों को, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, १।) रु० में लेनी पड़ती है—अर्थात् हम लोगों को चार आने अधिक देने पड़ते हैं। इस हिसाब से यदि पांच करोड़ का स्वदेशी माल ख़रीदा जाय तो ग्राहकों को एक करोड़ रुपये अधिक देने पड़ेंगे। इसी लिये कोई कोई कहते हैं कि स्वदेशी आन्दोलन से लोगों की हानि होती है। परंतु वे लोग इस बात पर ध्यान नहीं देते कि पांच करोड़ का स्वदेशी माल न लेते हुए यदि चार करोड़

का विलायती माल लिया जाय, तो ये चार करोड़ रुपये सब विलायत को चले जायँगे; और यदि चार करोड़ के विलायती माल के बदले पांच करोड़ का स्वदेशी माल लिया जाय तो ये पांच करोड़ रुपये सब इसी देश में बने रहेंगे। इस कथन में कुछ भी सत्य का अंश नहीं है, कि चार करोड़ का विलायती माल लेने के बदले पांच करोड़ का स्वदेशी माल लेने से इस देश के एक करोड़ की हानि होती है। हां, इसमें संदेह नहीं कि ग्राहकों को, स्वदेशी वस्तु खरीदने से, एक करोड़ रुपये अधिक देने पड़ते हैं। स्मरण रहे कि ये एक करोड़ रुपये किसी अन्य देश में चले नहीं जाते—वे सब इसी देश में रह जाते हैं; और, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार, वही द्रव्य, नये नये कारखाने खोलने के समय, पूंजी का काम देता है। स्वदेशी आन्दोलन से—स्वदेशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा से—और विदेशी वस्तु पर कर लगाने से, देशी व्यापार को जो उत्तेजन दिया जाता है उसका मार्ग यही है। इस उद्देश की सफलता के लिये अन्य मार्ग ही नहीं। जब विदेशी वस्तु पर कर लगाने से, या स्वदेशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा से, पदार्थों की क़ीमत बढ़ जाती है, तभी कारखानेवालों को बहुत नफ़ा होता है और वह नफ़ा पूंजी के रूप में, नये नये कारखाने खोलने में, लगाया जाता है। अर्थशास्त्र का यह सिद्धान्त है कि जब किसी वस्तु की मांग अधिक होती है, तब वह महँगी हो जाती है; अर्थात् उसकी क़ीमत बढ़ जाती है। क़ीमत के बढ़ जाने से नफ़ा अधिक होता है, और पूंजीवाले, उस पदार्थ के उत्पादन में, अपनी पूंजी लगाने लगते हैं। इससे उस वस्तु की आमद बढ़ जाती है और क़ीमत फिर भी पूर्ववत् हो जाती है। इसीको मांग और आमद का समीकरण कहते हैं। इस प्रकार जब कारखानेवालों का नफ़ा बहुत बढ़ जाता है और देश में नये नये कारखाने खोले जाते हैं तब देशी वस्तु बहुतायत से बनने लगती हैं और उनकी क़ीमत घट जाती है। जो लोग यह कहते हैं कि स्वदेशी आन्दोलन से देशी वस्तुओं की क़ीमत बढ़ जाती है और देश का नुकसान होता है, वे लोग अर्थशास्त्र के उक्त सिद्धान्त के सम्बन्ध में अपना अज्ञान प्रकट करते हैं। स्वदेशी आन्दोलन--स्वदेशी वस्तु के व्यवहार की प्रतिज्ञा--और संरक्षित व्यापार-नीति एक ही बात है। सिर्फ

यही दो कृत्रिम उपाय हैं जिनके द्वारा हम अपने देश के व्यापार की उन्नति कर सकते हैं। यह बात सब लोगों को विदित है कि संरक्षित व्यापार-नीति का अवलम्ब करना सरकार के अधीन है; परंतु स्वदेशी आन्दोलन--स्वदेशी वस्तु का व्यवहार--हमारे ही हाथ में है। इस आन्दोलन के कारण यदि इस समय स्वदेशी वस्तुओं की क़ीमत कुछ बढ़ रही है तो यही समझना चाहिए कि अर्थशास्त्र की क्रिया का आरंभ हुआ है और इसका परिणाम भी उसी शास्त्र के अटल सिद्धान्त के अनुसार, हमारे देश के व्यापार के लिये, अत्यंत लाभदायक होगा।

---

## अंगरेज़ों ने हमारा व्यापार कैसे बरबाद किया।

प्राचीन समय में इस देश का व्यापार बहुत अच्छी दशा में था। यूरप के कवियों, लेखकों और प्रवासियों ने इस देश की कारीगरी, कलाकुशलता और वैभव की बहुत प्रशंसा की है। उस समय, इस देश की वस्तु, दुनिया के सब भागों में भेजी जाती थी; और वह, अन्य देशों की वस्तु से, ज्यादा पसन्द की जाती थी। अकेले बंगाल-प्रांत से १५ करोड़ का महीन कपड़ा, हर साल, विदेशों को भेजा जाता था। पटना में ३३०४२६ स्त्रियां, शाहबाद में १५९५०० स्त्रियां, गोरखपुर में १७५६०० स्त्रियां चरखों पर सूत कातकर ३५ लाख रुपये कमाती थीं। इसी प्रकार दीनापुर की स्त्रियां ९ लाख और पुर्निया ज़िले की स्त्रियां १० लाख रुपये का, सूत कातने का, काम करती थीं। सन् १७५७ ई. में, जब लार्ड क्लाइव मुरशिदाबाद को गया था तब उसके संबंध में उसने यह लिखा था कि "यह शहर लंदन के समान विस्तृत, आबाद और धनी है; इस शहर के लोग लंदन से भी बढ़कर मालदार हैं"*। परंतु जबसे अंगरेज इस देश में आये तबसे उन लोगों ने हमारे व्यापार को नष्ट करने का उद्योग आरंभ किया।

---

* Cf:—"This city is as extensive, populous and rich as the city of London, with this difference——that there are individuals in the first possessing infinitely greater property than in the last city."

कम्पनी-सरकार की अमलदारी के आरंभ में, अंगरेजों ने, इस देश के जुलाहों और व्यापारियों पर जो जुल्म किया था उसका वर्णन अंगरेजी ग्रंथों ही में पाया जाता है। उस समय, वे लोग, हमारे जुलाहों को स्वतंत्रता-पूर्वक न तो कपड़ा बुनने देते थे, और न बुना हुआ कपड़ा बेचनेही देते थे। यही हाल और रोजगारियों का भी था। नवाब मीर कासिम ने, सन् १७६२ ई० में, गवर्नर साहब को जो पत्र भेजा था उसमें अंगरेज-व्यापारियों के संबंध में लिखा है कि "They forcibly take away the goods and commodities of the Reiats, merchants &c. for a fourth part of their value; and by ways of violence and oppressions they oblige the Reiats &c. to give five rupees for goods which are worth but one rupee." इसका भावार्थ यह है—वे लोग रैयत और व्यापारियों का माल जबरदस्ती से ले जाते हैं और सिर्फ चौथाई क़ीमत देते हैं। जिस चीज की क़ीमत सिर्फ एक रुपया है उसके लिए वे लोग, जबरदस्ती और जुल्म करके, पांच रुपये ले लेते हैं।

"*Considerations on Indian Affairs*" नाम के ग्रंथ में, विलियम बोल्ट्स साहब लिखते हैं कि "यह बात बहुत सच है कि जिस तरह कम्पनी, इस देश में, व्यापार कर रही है वह जुल्म और उपद्रव का एक लगातार दृश्य है, जिसके हानिकारक परिणाम प्रत्येक जुलाहे और कारीगर पर देख पड़ रहे हैं। अंगरेज लोग, इस देश में पैदा होनेवाली प्रत्येक वस्तु का, ठीका ( Monopoly ) ले लेते हैं और अपनी ही खुशी से उसका भाव मुकर्रर करते हैं। जब उनका गुमाश्ता किसी गांव में आता है, तब वह अपने चपरासी को भेजकर उस गांव के दलालों और जुलाहों को अपनी कचहरी में बुलवाता है और उनको कुछ रुपये पेशगी देकर एक तमस्सुक पर यह लिखवा लेता है कि इतना माल, इतने दिनों में, इस भाव से दिया जायगा। यह काम जुलाहों की रजामन्दी से किया नहीं जाता। कम्पनी के गुमाश्ता लोग, अपनी इच्छा के अनुसार, जुलाहों से मनमानी शर्तें लिखवा लेते हैं। यदि कोई पेशगी लेने से इन्कार करे तो रुपये उसकी कमर में बांध दिये जाते हैं और उसको कोड़े मारकर कचहरी से निकाल

देते हैं। बहुतेरे जुलाहों के नाम कम्पनी के रजिस्टर में दर्ज रहते हैं। उन्हें किसी दूसरे मनुष्य का काम करने की इजाजत दी नहीं जाती। इस व्यवहार में जो उत्पात होता है वह सचमुच कल्पनातीत है और उसका अंतिम फल यही होता है कि बेचारे जुलाहे ठगाए जाते हैं! जिस वस्तु की कीमत, खुले बजार में, १०० रुपये आती उसके लिये उन्हें सिर्फ ५०-६० रुपये दिये जाते हैं। जब जुलाहे इस प्रकार की कड़ी शर्तें पूरी कर नहीं सकते—जब वे तमस्सुक में लिखी हुई शर्तों के मुताबिक माल तैयार नहीं कर सकते—तब उनकी सब जायदाद छीन ली जाती है और उसको बेचकर कम्पनी के रुपये वसूल कर लिये जाते हैं। रेशम लपेटनेवालों के साथ ऐसा अन्याय का बर्ताव किया गया है कि उन लोगों ने अपने अंगूठे तक काट डाले; इस हेतु से कि उन्हें रेशम लपेटने का काम ही न करना पड़े!"

इस तरह अनेक अन्यायी, कठोर और जालिम उपायों से, अंगरेजों ने, इस देश के जुलाहों और अन्य व्यवसाइयों का रोजगार बंद कर दिया।

सन् १७६५ ई० से, इस देश में, ईस्ट इन्डिया कम्पनी की व्यवस्थित राजसत्ता का आरंभ हुआ और तभी से हमारे व्यापार को नष्ट करने के, उपर्युक्त जालिम उपाय बंद होकर, व्यवस्थित और सभ्यता के उपायों की योजना होने लगी। अर्थात इस देश के व्यापार को बरबाद करने के हेतु इंग्लैन्ड के लोग कानून बनाने लगे! कम्पनी के डाइरेक्टरों ने यह हुक्म जारी किया कि, "बंगाल के लोगों को रेशम का कपड़ा बुनने से रोकना चाहिए। वहां के लोग सिर्फ कच्चा रेशम तैयार करें। उस रेशम के कपड़े इंग्लैन्ड के कारखानों में बुने जायँगे। रेशम लपेटनेवालों को कम्पनी ही के कारखानों में काम करना चाहिए। यदि वे बाहर (किसी दूसरी जगह) काम करें तो उनको सख्त सजा दी जाय।" सरांश, अंगरेज लोगों ने इस देश के जुलाहों से यही कहा कि "तुम लोग कपड़ा बुनने का काम छोड़ दो; हम लोगों को सिर्फ कच्चा माल दिया करो। हम लोग, तुम्हारे लिये, कपड़ा बुन देंगे।" इस आज्ञा का पालन बड़ी सख्ती से होने लगा और अंत में इसका परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में सिर्फ कच्चा माल तैयार होने लगा और

वह सब इंग्लैन्ड के कारखानों में जाने लगा। इधर भारतवर्ष के कारीगर रसातल को चले गये—भारतवर्ष का व्यापार मिट्टी में मिल गया—और उधर इंग्लैन्ड के कारखानों के मालिक मालामाल हो गये—अंगरेज़ों का व्यापार खूब बढ़ने लगा।

इंग्लैन्ड में, कम्पनी के कारबार की, कई बार तहक़ीकात हुई। पहली तहक़ीकात सन् १७९३ ई० में हुई; परंतु हिंदुस्थान की आर्थिक दशा को सुधारने का कुछ भी यत्न नहीं किया गया। दूसरी तहक़ीकात सन् १८१३ ई० में हुई। उस समय एक कमीशन नियत किया गया था और हेस्टिंग्स, मनरो, मालकम आदि बड़े बड़े अफ़सरों की सलाह ली गई थी। सलाह इस बात की न थी, कि भारतवर्ष की आर्थिक दशा की उन्नति किस प्रकार की जाय; परंतु सलाह सिर्फ़ इस बात की थी, कि भारतवर्ष के व्यापार को नष्ट करके इंग्लैन्ड के कारखानों की तरक्की किस उपाय से की जाय। धन्य है भारत की महिमा! अंगरेज़ों के हज़ार यत्न करने पर भी, उस समय, भारतवर्ष के सूती और रेशमी कपड़ों पर इंग्लैन्ड में ५०-६० रुपये सैकड़ा नफ़ा मिलता था। अर्थात् जब इंग्लैन्ड के बने हुए सूती और रेशमी कपड़े, इंग्लैन्ड में १०० रुपये को मिलते थे, तब हिन्दुस्थान के बने हुए वही कपड़े इंग्लैन्ड में ५० या ६० रुपये को मिलते थे। इसी लिये हमारे देश का बना हुआ कपड़ा, उस समय, विलायत को बहुतायत से भेजा जाता था। विलायत के जुलाहों के बनाये हुए कपड़ों को वहां कोई भी पसन्द न करता था। हमारी यह कारीगरी, हमारी यह कुशलता, हमारी यह व्यापार-शक्ति अंगरेज़ों को अच्छी न लगी। अतएव अपने देश के व्यापार की रक्षा और उन्नति के हेतु उन लोगों ने 'स्वदेशी वस्तु व्यवहार की व्यवस्था' की और हिन्दुस्थान के कपड़ों को 'बहिष्कृत' कर दिया। इंग्लैन्ड की पार्लिमेन्ट-सभा में क़ानून बनाया गया, कि जो व्यापारी हिन्दुस्थानी कपड़ा बेचेगा उसको २००) रु० और जो मनुष्य हिन्दुस्थानी कपड़ा पहनेगा उसको ५०) रुपये दण्ड किया जायगा। सन् १८१५ ई० में दूसरा क़ानून जारी किया गया कि इंग्लैन्ड में कालिकत से आनेवाले १०० पौंड* के कपड़े पर

* १ पौंड=१५ रुपये; १ शिलिंग=१२ आने; १ पेन्स=१ आना।

६८ पौंड ६ शिलिंग ८ पेन्स कर लगाया जाय, ढाका की १०० पौंड की मलमल पर २७ पौंड ६ शि० ८ पे० कर लगाया जाय और हिन्दुस्थान के रंगीन कपड़े की आमद बिलकुल बंद कर दी जाय। जब अंगरेजों ने यह देखा कि इतना कड़ा कर लगाने पर भी हिन्दुस्थान की चीजें इंग्लैन्ड में बिक्री के लिये आती ही हैं, तब उन लोगों ने सैकड़ा २० पौंड कर और बढ़ा दिया। अब १०० पौंड क़ीमत की छीट पर ७८ पौं० ६ शि० ८ पे० और मलमल पर ४७ पौं० ६ शि० ८ पे० कर हो गया! इस प्रकार, सभ्यता के उपायों से, सभ्यता की घमंड करनेवाले अंगरेजों ने, इस देश के व्यापार को मिट्टी में मिला दिया!! यह भारतवासियों का दुर्भाग्य है!!!

अंगरेजों ने सभ्यता के जिन उपायों से हमारे व्यापार का नाश किया उनके सम्बन्ध में अंगरेज़ इतिहासकार (मिल और विलसन) लिखते हैं कि "हिन्दुस्थान जिस देश के अधीन हुआ है उसके (अर्थात् इंग्लैन्ड के) अन्याय का यह एक विषाद-जनक (खेद-कारक) उदाहरण है। सन् १८१३ ई. की तहक़ीक़ात से यह मालूम हुआ कि हिन्दुस्थान के सूती और रेशमी कपड़े, विलायत में बने हुए कपड़ों से, ५०-६० सैकड़ा कम दाम पर बिकते थे। तब अंगरेजों को, हिन्दुस्थानी कपड़ों पर ७०-८० सैकड़ा कर लगाकर, और हिन्दुस्थानी कपड़ों का व्यवहार बंद करके, अपने व्यापार की रक्षा करनी पड़ी। यदि ऐसा न किया जाता - यदि इस प्रकार निषेधक-कर लगाकर हिन्दुस्थान के व्यापार में बाधा डाली न जाती—तो पेज्ली और मंचेस्टर की मिलें शुरुआत ही में बंद हो जातीं; और फिर वे भाफ़ के बल से भी चलाई जा न सकतीं। यथार्थ में वे (पेज्ली और मंचेस्टर की मिलें) हिंदुस्थान के व्यापार को बरबाद करके चलाई गई हैं। यदि हिन्दुस्थानी स्वतंत्र होते तो वे इस अन्याय का बदला अवश्य लेते—वे भी अंगरेजों के माल पर निषेधक-कर लगाते और अपने उत्पादक तथा लाभदायक व्यापार की रक्षा करते। परंतु उन लोगों को, आत्म-रक्षा के उक्त स्वाधीन उपाय की योजना करने की परवानगी न थी। वे सर्वथा विदेशियों की कृपा के अधीन थे! उन लोगों पर विलायती चीजें ज़बरदस्ती से लाद दी जाती थीं और उन चीजों पर कुछ कर भी लगाया नहीं जाता था।

जब विदेशी व्यापारी ( अंगरेज ) अपने प्रतिस्पर्धियों ( हिन्दुस्थानियों ) का मुक़ाबला उचित मार्ग से कर न सके, तब वे उनका गला घोटने ( उनके व्यापार को बरबाद करने) के लिये राजनैतिक अनीति के शस्त्र का उपयोग करने लगे।"

अंगरेज़ लोगों ने, जानबूझकर, केवल स्वार्थ-बुद्धि से—केवल अपना पेट भरने के लिए—इस देश का व्यापार बरबाद कर दिया और इस देश के लोगों को कृषि पर निर्वाह करने और केवल कच्चा माल तैयार करने को मजबूर किया। सन् १८३३ ई. में कंपनी के कारबार की फिर जांच हुई; और सन् १८४० ई. में, हिन्दुस्थान के व्यापार के संबंध में तहक़ीक़ात करने के लिये, इंग्लैन्ड में एक कमेटी मुकर्रर हुई। उस कमेटी में बहुत से अंगरेज़ अफ़सरों ने गवाही दी थी। उससे भी यही बात पाई जाती है कि अंगरेज़ों ने, इस देश का व्यापार, केवल अपने हित के लिये, नष्ट कर डाला। यह बात नीचे लिखे हुए कुछ गवाहों के बयान से स्पष्ट विदित हो जायगी।

ट्रेवीलियन साहब कहते हैं:—"हम लोगों ने हिन्दुस्थानियों का व्यापार चौपट कर दिया। अब उन लोगों को, भूमि की उपज के सिवा अन्य कोई आधार नहीं है।"

शोर साहब कहते हैं:—"बहुधा ऐसा कहा जाता है, कि इंग्लैन्ड के व्यापार के लिये हिन्दुस्थान के व्यापार का लोप करना, अंगरेजों की प्रवीणता का, एक दीप्तिमान् उदाहरण है। मेरी समझ में, यह इस बात का दृढ़ प्रमाण है कि अंगरेजों ने हिंदुस्थान में किस तरह जुल्म और उपद्रव किया; और उन लोगों ने अपने देश की भलाई के लिये हिन्दुस्थान को किस तरह निर्धन—दरिद्र—सत्वहीन—कर डाला।"

लारपेन्ट साहब कहते हैं:—"हम लोगों ने हिन्दुस्थान की कारीगरी का नाश किया है।"

मान्टगोमरी मार्टिन साहब कहते हैं:—"हम लोगों ने अपना माल जबरदस्ती से हिंदुस्थानियों से लिवाया है। हमारे ऊनी कपड़ों पर कुछ भी कर नहीं है और सूती कपड़ों पर सिर्फ २½ सैकड़ा कर है। परंतु हिन्दु-

स्थान के माल पर हम लोगों ने ऐसा कड़ा कर लगाया है कि उसके व्यापार ही को रोक दिया। १०० के माल पर १० से लेकर २०, ३०, ५०, १००, ५०० और १००० तक भी कर लगाया गया है ! मैं इस बात का वर्णन नहीं कर सकता कि सूरत, ढाका, मुरशिदाबाद आदि शहरों का व्यापार किस तरह नष्ट किया गया। अंगरेजों के इस व्यवहार को मैं उचित और न्याय्य नहीं समझता। मेरी यह समझ है कि एक बलवान् देश ने दूसरे निर्बल देश पर अपनी शक्ति का प्रयोग किया है।"

"मैं इस बात को नहीं मानता कि, हिन्दुस्थान कृषिप्रधान देश है। उस देश की कारीगरी प्राचीन समय से प्रसिद्ध है। कोई देश, जहां केवल उचित मार्गोंही का अवलम्ब किया जाता था, उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। अब उसको कृषिप्रधान देश बनाने का यत्न करना अन्याय की बात है। मैं इस बात को नहीं मानता, कि इंग्लैन्ड को कच्चा माल देने के लिये हिन्दुस्थान एक कृषिक्षेत्र हो जायगा।"

यह लिखते हमें खेद होता है कि हिन्दुस्थान, इस समय, इंग्लैन्ड को हर किसम का कच्चा माल देने के लिये सचमुच कृषिक्षेत्र ही बन गया है !

इस प्रकार, सन् १८५८ ई. तक, इस देश की सब कारीगरी, सब कुशलता और सब व्यापार अंगरेजों ने डुबा दिया। सन् १८५८ ई० में कम्पनी के शासन का अन्त हुआ और इस देश की राजसत्ता इंग्लैन्ड की पार्लिमेन्ट तथा राजा के हाथ में आई। उस समय आशा की गई थी कि न्यायी बृटिश-राजनीति से इस देश का कुछ कल्याण होगा। परंतु वह आशा पूरी न हुई। अंगरेज-व्यापारियों ने अपनी स्वार्थ-बुद्धि का त्याग नहीं किया। वे लोग अपने व्यापार की उन्नति के लिये अनेक अनुचित और अन्यायी उपायों की योजना कराने की चेष्टा करतेही रहे। विलायती कपड़े पर हिन्दुस्थान में जो थोड़ा सा कर लिया जाता था वह भी सन् १८९२ ई. में उठा दिया गया, और हिन्दुस्थान से जो कपास विलायत को भेजा जाता था उसका कर माफ़ हो गया। इतनाही नहीं; सन् १८९६ ई. में हिन्दुस्थान की मिलों में बने हुए सब कपड़ों पर ३½ सैकड़ा कर लगा

दिया गया ! इस देश के नूतन और बाल्यावस्था के कारखानों की उन्नति करने के बदले, उनकी वृद्धि को रोकने का यह यत्न, दुनिया के किसी सभ्य देश में देख न पड़ेगा !! धन्य है बृटिश व्यापार-नीति !!!

---

## "स्वदेशी" स्वयं-सेवक ।

स्वदेशी के यथार्थ और विस्तृत भाव का उल्लेख, इस लेख में, कई बार किया गया है । जिन जिन बातों से स्वदेश की उन्नति होती है वे सब 'स्वदेशी' ही हैं । यदि इस समय कोई मनुष्य हिंदुस्थान के किसी भाग में जाकर लोगों की बातचीत पर ध्यान दे तो उसे यही देख पड़ेगा कि 'स्वदेशी' का प्रचार खूब जोर से हो रहा है । कहीं सभाएं हो रही हैं; कहीं स्वतंत्र शालाएं और औद्योगिक प्रदर्शनी खोली जा रही हैं; कहीं औद्योगिक और वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये विद्यार्थी विदेशों को भेजे जा रहे हैं; कहीं स्वदेशी दूकानें लगाई जा रही हैं और कहीं नये कारखाने खोले जा रहे हैं । बंगाल-प्रांत के लोग सरकारी अफसरों का जुल्म और उपद्रव सहकर स्वावलम्बन और स्वाभिमान की शिक्षा दे रहे हैं । स्वदेशी वस्तु की कीमत बढ़जाने पर भी सब लोग उसीको खुशी से ले रहे हैं । और एक प्रांत का आदमी अन्य प्रांत के आदमी के विषय में अपना प्रेम और आदर व्यक्त कर रहा है । सब से अधिक आश्चर्यकारक बात यह है, कि इंग्लैन्ड के लोग भी, इस समय, हिंदुस्थान के संबंध में विचार कर रहे हैं । ये सब राष्ट्रीय-जागृति के चिन्ह हैं ।

इसमें संदेह नहीं कि, इस समय, स्वदेशी का प्रचार खूब हो रहा है; परंतु डर इस बात का है कि, जिस तरह जंगल की आग थोड़े समय में चारों ओर फैलकर शीघ्रही आपही आप बुझ जाती है, उस तरह यह आन्दोलन भी अल्प समय में ठंडा न हो जाय । इस देश का यही हाल है कि जितनी शीघ्रता से कोई आन्दोलन उत्पन्न होता है उतनीही शीघ्रता से वह ठंडा भी

होजाता है । अर्थात् कोई आन्दोलन यहां चिरस्थायी होने नहीं पाता। अत-एव प्रस्तुत आन्दोलन को चिरस्थायी करने का कुछ विशेष यत्न किया जाना चाहिए। परंतु प्रश्न यह है कि यह काम करै कौन ? अपने देश की वर्तमान दशा के संबंध में लोगों के विचारों को जागृत कौन करे ? इस कार्य के करनेवालों को, यदि किसी दुरभिमानी, अन्यायी और स्वेच्छाचारी अफ़सर से कुछ तकलीफ़ हो, तो उसकी परवा न करके 'स्वदेशी' के लिये आत्मार्पण करने को कौन तैयार है ? इसका उत्तर यह है, कि यह काम सब लोगों का है; किसी एक व्यक्ति का नहीं, किन्तु सारे समाज—सारे देश—का है। अतएव प्रत्येक देशहितैषी मनुष्य को 'स्वदेशी' का स्वयं-सेवक ( Volunteer वालंटीयर ) बनकर, 'स्वदेशी' को चिरस्थायी करने का तन, मन, धन से उद्योग करना चाहिए। जिस तरह बंगाल के स्वयं-सेवक 'स्वदेशी' का प्रचार बंगाल प्रांत में कर रहे हैं, उसी तरह इस देश के सब प्रांतों में कुछ उत्साही लोगों को स्वयं-सेवक बनकर 'स्वदेशी' का प्रचार करना चाहिए। छोटे बड़े, विद्वान अविद्वान्, श्रीमान गरीब, व्यापारी विद्यार्थी, गृहस्थ सन्यासी आदि किसी प्रकार का भेदाभेद न समझकर, सब श्रेणी के लोगों में 'स्वदेशी' स्वयं-सेवक उत्पन्न होने चाहिये। 'स्वदेशी' की वृद्धि करनेवाले चाहे व्यापारी हों, चाहे ग्राहक हों, सब लोगों को कुछ स्वयं-सेवक दरकार हैं । इस समय, यदि प्रत्येक गांव में नहीं तो प्रत्येक कसबे में, और प्रत्येक शहर में, कुछ 'स्वदेशी' स्वयं-सेवकों की बहुत ज़रूरत है । इन 'स्वदेशी' स्वयं-सेवकों का यही काम है, कि वे घर घर में— गली गली में——जाकर लोगों को 'स्वदेशी' का उपदेश दें, लोगों में 'स्वदेशी' के विचारों की सदा जागृति करते रहें, लोगों को स्वार्थत्याग और स्वावलंबन की शिक्षा दें, व्यापारियों को व्यापार-संबंधी नई नई बातों की सूचना दें और विद्यार्थियों को 'स्वदेशी' का व्रत धारण करने के लिये उत्तेजित करें । उनका यह भी काम है कि वे 'स्वदेशी' पर अच्छे अच्छे लेख लिखें या लिखवावें, और उनकी लाखों प्रतियां छपवाकर, बिना-मूल्य या अल्प मूल्य पर, सर्व साधारण लोगों में वितरण करें। इस काम में श्रीमानों को द्रव्य-द्वारा सहायता करनी चाहिए। हमारे देश में भाट, चारण,

और कवि, गवैया, नाटकवाले, तमाशेवाले की कुछ कमी नहीं है। यदि ये लोग अपने अपने व्यवसायों में 'स्वदेशी' को प्रधान स्थान दें तो उनके द्वारा इस आन्दोलन के चिरस्थायी हो जाने की बहुत कुछ आशा की जा सकती है।

हां, यह बात सच है कि 'स्वदेशी' को उक्त प्रकार से चिरस्थायी करने का यत्न बहुत कठिन है। हम जानते हैं कि यह काम प्राचीन समय के समुद्रमंथन के समान अत्यंत बिकट' है। समुद्रमंथन से अमृत और अनेक बहुमूल्य रत्न उत्पन्न हुए थे; परंतु उन्हींके साथ, प्रथम, हलाहल नाम का विष भी उत्पन्न हुआ था। और जब श्रीशंकर भगवान् ने उस विष को स्वयं अपने कण्ठ में रख लिया, तभी देवताओं को, अंत में, अमृत प्राप्त हुआ। इससे हम लोगों को यही शिक्षा लेनी चाहिए कि, यदि हम अपने स्वदेशी आन्दोलन से लाभ उठाना चाहते हैं--यदि हम राष्ट्रमंथन-द्वारा अपने मृतप्राय देशभाइयों को सजीव करना चाहते हैं--तो हमको उससे उत्पन्न होनेवाली आरंभिक आपदाओं को--प्राथमिक कष्टों को--अवश्य सहना पड़ेगा। जबतक हम लोग ( अर्थात् जिन लोगों को 'स्वदेशी' स्वयं-सेवक बनकर इस आन्दोलन को चिरस्थायी करने की इच्छा है ) हर किसम के दुःख, कष्ट और आपदाओं को खुशी से सहने के लिये तैयार न होंगे, तबतक राष्ट्रमंथन का हमारा कार्य कदापि सफल न होगा। जबतक हम लोग अपनी क्षुद्र स्वार्थबुद्धि का त्याग न करेंगे; जबतक हम लोग अपनी मातृभूमि के लिये आत्मार्पण न करेंगे; जबतक हम लोग अपने देश को सजीव करने की अटल प्रतिज्ञा न करेंगे; तबतक हमारे स्वदेशी आन्दोलन में चिरस्थायी शक्ति उत्पन्न न होगी। अतएव हमारी यही प्रार्थना है कि 'स्वदेशी' स्वयं-सेवकों को, किसी प्रकार के संकटों से भयभीत न होकर, अपने देश के हित के लिये, अपने कर्तव्य में सदा तत्पर और लीन रहना चाहिए।

सर हेनरी काटन का नाम इस देश के बहुतेरे लोगों को विदित है। आपने गत वर्ष की कांग्रेस को एक संदेसा भेजा था। वह 'हिन्दुस्तान

रिव्यू' के गत दिसम्बर मास की संख्या में प्रकाशित हुआ है। उसमें आपने इस देश की गत वर्ष की स्थिति की आलोचना करते हुए स्वदेशी आन्दोलन के संबंध में यह लिखा है कि– "यद्यपि इंग्लैन्ड-निवासी हिन्दुस्थान के संबंध में सदा बेफिकर रहते हैं, तथापि इस वर्ष उन लोगों का ध्यान हिन्दुस्थान की ओर कुछ विशेष रीति से, अधिक आकर्षित हुआ है। इसके प्रधान कारण 'वंग-भंग', 'स्वदेशी आन्दोलन' और 'बायकाट' हैं। बंगाल के दो टुकड़े करने में सरकार ने जो बेक़ायदा कार्रवाई की उससे अप्रसन्न होकर लोगों ने विलायती (अंगरेज़ी) वस्तु के त्याग की अटल प्रतिज्ञा की। इस आन्दोलन का प्रधान हेतु यही है कि, अंगरेज-व्यापारियों के जेब को धक्का देकर उनका ध्यान हिन्दुस्थान के राजकाज की ओर आकर्षित किया जाय और उनके द्वारा, हिन्दुस्थानियों की अभिलाषाओं और हक़ों पर ध्यान देने के लिये, सरकार को मजबूर किया जाय। यह हेतु कुछ अंश में सफल हो गया है। हिन्दुस्थान के संबंध में, इस से अधिक, किसी अन्य विषय ने, अंगरेज़ों का मन आकर्षित नहीं किया था। इस विषय के जो समाचार तार से आते हैं उनसे अंगरेज़ों के मन में बहुत व्याकुलता उत्पन्न हो रही है। इंग्लैन्ड में वादविवाद के जो साधारण विषय समझे जाते हैं उन्हींमें आजकल बंगाल के 'बायकाट' की भी गणना की जाती है और उस विषय पर सभाओं में खूब चर्चा होती है। सारांश, अब यह बात इंग्लैन्ड का एक अदना आदमी भी जानता है कि, वंग-भंग से हिन्दुस्थानियों का मन अप्रसन्न और असंतुष्ट हो गया है। क्या यह लाभ थोड़ा है? यदि यह आन्दोलन बंगाल में इसी तरह होता रहे, और यदि वह और और प्रांतों में भी होने लगे—इसमें संदेह नहीं कि वह सब प्रांतों में शीघ्र ही फैल जायगा—तो उससे हिन्दुस्थान में एक महत्व की साम्पत्तिक क्रान्ति हो जायगी"। हमारे स्वदेशी आन्दोलन के संबंध में इस प्रकार अपनी सम्मति प्रकट करके काटन साहब हम लोगों को उपदेश देते हैं कि "हे भारतवासियो, धैर्य और अच्छे दिल से उद्योग करो। तुम लोगों के विरुद्ध जो कार्रवाई की गई थी उसका अब अंत होनेवाला है। इस समय तुम लोगों ने जो तरक्की की है उसको शायद

तुम नहीं जानते। तुम्हारी शक्ति हर रोज बढ़ती जाती है। अब तुम्हारी शक्ति का अनादर किया नहीं जा सकता। तुम लोगों ने, स्वदेशी आन्दोलन करके, अपनी अपार शक्ति का खूब परिचय दिया है। अतएव तुम्हारी शक्ति अवश्य सम्मानित होगी। तुम्हारे प्रभाव की वृद्धि हो रही है। तुम्हारी आवाज इंग्लैन्ड में भी सुन पड़ती है। तुम्हारे सहायकों की संख्या बढ़ती चली जा रही है। तुम्हारी आशा अवश्य सफल होगी। तुम लोग, प्राचीन समय से, आत्मत्याग के लिये प्रसिद्ध हो। आत्मत्याग का समय आन पहुँचा है। तुम्हारी भावी दशा तुम्हारेही हाथ में है। तुम अपने बंगाली-भाइयों की, शूरता की लड़ाई में, सहायता करो। हिन्दुस्थान के पुनरुज्जीवन तथा उन्नति के जिस कार्य में तुम्हारे बंगाली-भाई अग्रेसर हुए हैं उसमें तुम सब एक दिल से योग दो।"

अंत में हम भी परमेश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि हमारे देशभाई, काटन साहब के उपदेशानुसार, अपने देश की भावी दशा को स्वयं सुधारने के लिये, 'स्वदेशी' स्वयं-सेवक बनें; क्योंकि जब हम अपने मन में भावी उन्नति की आशा करके आत्मत्याग करेंगे और सच्चे 'स्वदेशी' स्वयं-सेवक बनेंगे तभी हमारे भाग्य का उदय होगा।

# हिन्दी-ग्रन्थमाला ।

यह मासिक पुस्तक, मई १६०६ ई० से, नागपुर की **हिन्दी-ग्रन्थ-प्रकाशक मंडली** द्वारा, प्रतिमास, प्रकाशित हो रही है । इसका उद्देश यह है कि, हिन्दी भाषा के पढ़नेवालों में देशोन्नति के नूतन विचारों की जागृति करने के हेतु, हिन्दी भाषा में आधुनिक तथा उपयोगी विषयों पर, उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रकाशित किये जाँय । इस मासिक पुस्तक में इतिहास, जीवन-चरित, व्यापार और राजनीति संबंधी विषयों के ग्रन्थ प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है । सम्प्रति, हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का लिखा हुआ "**स्वाधीनता**" नामक अत्युत्तम ग्रंथ और श्रीयुत ठाकुर सूर्य्यकुमार वर्मा कृत "**झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई का जीवन-चरित**"—ये दो ग्रंथ प्रकाशित किये जा रहे हैं । इन्हींके साथ "**निबंध-संग्रह**" नाम का एक और ग्रंथ छापा जा रहा है जिसमें साहित्य तथा राजनीति विषयक अच्छे अच्छे लेखों का संग्रह है । एक वर्ष की बारह संख्याओं में, इस मासिक पुस्तक द्वारा, ६०० से ७०० तक पृष्ठ प्रकाशित होंगे । जब एक ग्रंथ पूरा हो जायगा तब उसकी, सुंदर सुनहरी-अक्षर-युक्त, कपड़े की, जिल्द बंधवाई जायगी । इस मासिक पुस्तक का अग्रिम वार्षिक मूल्य ३) रु० है ।

इस मासिक पुस्तक में लेख और ग्रंथ लिखनेवालों को पारितोषिक भी दिया जाता है ।

जो लोग **हिन्दी-ग्रंथमाला** के ग्राहक बनना चाहें, या जो लोग इस मासिक पुस्तक में प्रकाशित करने के लिये, मंडली द्वारा नियत किसी विषय पर लेख या ग्रंथ लिखना चाहें, वे नीचे लिखे हुए पते पर पत्र-व्यवहार करें ।

**हिन्दी-ग्रन्थमाला** की नमूने की एक संख्या आठ आने में मिलती है ।


**माधवराव सप्रे, बी. ए.**

व्यवस्थापक "हिन्दी-ग्रन्थमाला",

नागपुर ।